

“अगर आमने सामने बैठकर संभाषण किया जाय तो एक बात और स्पष्ट होती है। पान बेचने वाला भी ऐसी बात या विचार बेच सकता है जो विज्ञान भवन में बैठकर बात करनेवाले के भेजे में पैदा ही नहीं होते। कभी-कभी एक भेड़ चरानेवाले के पास भी कहने को कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिन्हें सुनकर आदमियों को चरानेवाले की श्रवण भी चक्कर में पड़ सकती है।”

...और यही ‘आमने सामने’ की ऊपर से देखने में सादी परन्तु भीतर से बहुत गहरी व्यंग्य-रचनाओं की विशेषता है। लेखक बड़ी कुशलता से अपने विषय पर चोट पर चोट करता और पाठक को गुदगुदाता चलता है। पुस्तक की रचनाएं पाठक को गहरा आत्मसंतोष प्रदान करती हैं।

22

268
कधर्मा

6568
28/9/68

सिद्धि

आमले सामने

मालीराम शर्मा

मूल्य : आठ रुपये (8.00)

प्रथम संस्करण 1975 © मालीराम शर्मा

SAMNE (Satire) by Mali Ram Sharma

अपनी तरफ से ²⁶⁴ ~~अपनी तरफ से~~

बातचीत अगर हो तो भामने-सामने ही हो, ठीक रहना है, मुलकर बात कह भी दो धीरे सुन भी लो। किसी वकील के जरिये या किसी को मध्यस्थ बनाकर बात की जाए तो बात इतनी कारगर नहीं होती। वकील लोग कई बार पूरा 'शू पाइय' पेश नहीं कर पाते।

राजनयिक लोगों की भाषा में इसे 'डाइरेक्ट डिप्लोमेसी' की शैली कहते हैं। जब दो राष्ट्र बिना किसी मध्यस्थता के बात करते हैं तो शैली हो जानी है द्विपक्षीय बातचीत की, काउलेटरलिसम की। इन सबसे हटकर जब स्थितियों के बीच भामने-सामने बात होती है, तो शैली हो जाती है परिसम्वाद की।

सम्वाद किसीसे भी हो सकता है, पनवाड़ी से, भेड़ चराने वाले से, चाल काटने वाले से, ऊट चराने वाले से, बड़ी-बड़े को चाट बेचने वाले से। इसके लिए रात हो तो एक ही होनी चाहिए, विश्वविद्यालय से प्राप्त किसी डिग्री की, या किसी प्रकार के लाइसेन्स या परमिट की जरूरत नहीं।

अगर भामने-सामने बैठकर संभाषण किया जाये तो एक बात और स्पष्ट होती है। पान बेचने वाला भी ऐसी बात या विचार बेच सकता है जो बिजान भवन में बैठकर बात करने वाले के भेजे से पैदा हो नहीं होती। कभी-कभी एक भेड़ चराने वाले के पास भी कहने को कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिसे सुनकर मादमियो को चराने वाले की धन भी खबर में पड़ सकती है। परन्तु इसे मानने को कोई तैयार नहीं होता। कारण साफ यह हो सकता है कि ये लोग आपस और कान दोनों ही बन्द रखते हैं। कान तो तब मुलते हैं जब रेडियो मुलता है, रेडियो के जरिये ही कान में बात पहुँचे। बाकी मोरू में कोई रीला-रण्या करे तो वह सुनने लायक नहीं होता। एक बड़ी-बंभाई मान्यता है। इसलिए बातों में जानबूझकर रुई दबाई जाती है।

धोखे तो उस मूर्ख में खुलें जब किसी बातबारे में निगा हुआ हो, किसी विताव में निगा हुआ हो। वैसे भीत पर लिखा या अनलिखा पढ़ने की आदत नहीं। दुनिया अपने-आपमें एक बहुत बड़ी सुती रिताव है। यह बात बंधो-बंभाई मान्यता से भेल नहीं साती। मान्यताएं ब मर्यादाएं बोड़े भाज की बोड़

नहीं, गुणों से चली आ रही है। इसी बिना पर हर मान्यता पवित्र है। पवित्रता को नष्ट करना एक कुफ्र है।

कई बार एहसास होता है कि कुफ्र तो हो रहा है परन्तु ज्यों-ज्यों सम्वाद आगे चलता है तो एक बात स्पष्ट हो जाती है। कुफ्र कहाँ है, पता चल जाता है। सबसे बड़ा कुफ्र तो यह है कि हम बात की न्यायिता नहीं देगते, बरन देखते हैं बात करने वाले की 'क्यालिफिकेशन' तथा उसकी पूछ की सम्बाई। एक पन-वाड़ी जब एक पान के साथ ज्ञान की बात बेंचता है, तो हम यूक उछालने लगते हैं कि यह कैसे हो सकता है। उसके पास ज्ञान बेंचने का साइसेन्स नहीं है और उसका सारा का सारा ज्ञान ही 'कोण्ट्रिब्यूण्ड' है।

सारी समझ एक 'ए कैटेगरी' के ठेकेदारों को ठेके पर उठा दी गई। ऐसी हालत में वेगाराम की दरखास्त को कौन सुने ? दरखास्त फाइल कर दी गई। 'वन वे ट्रेफिक' का नियम बड़ी सख्ती से पालन हो रहा है।

चलो, कुफ्र क्या है, काफिर कौन है, एक बहस हो सकती है।

अगर बहस की बात है तो फिर भी इसके लिए सम्वाद हो जाये आमने-सामने बैठकर। वाद की बातें वाद में देखी जाएंगी। बहस अभी खतम होने थोड़े ही जा रही है। बहस तो लम्बी चलेगी, सारे मुद्दे आज ही हल होने थोड़े ही जा रहे हैं। बहस चालू है।

खैर, इसी बीच में श्री रामनरेश सोनी को धन्यवाद दे दूँ क्योंकि बहस के दौरान में कभी-कभी जरूरी बातें दिमाग से उतर जाया करती हैं। सोनी ने पाण्डुलिपि तैयार की, घण्टों बहस की, एक ओबजर्वर की हैसियत से सुनते रहे और कभी-कभी कान में बड़े काम की बातें भी कहीं। लगते हाथ राजपाल एण्ड सन्ज के श्री ईश्वरचन्द्र को भी याद करना चाहूंगा। उनसे चलते में बातें हुई। वे ही चालू बातें, चालू मुहावरे में, जो कि ट्रेन में, बस में बक्त काटने की गर्ज से एक अनजान व्यक्ति दूसरे अनजान व्यक्ति से करता है। वाद में बात और व्यक्ति दोनों ही भुला दिए जाते हैं। पर चालू बातों में किताब चालू हो गई, यह एक छोटा-सा कमाल है। इसके लिए धन्यवाद किसको देना चाहिए, मुझे या उन्हें ? इसपर फिर एक नई बहस खड़ी हो सकती है, इसलिए मैं ही धन्यवाद दे दूँ उनको तथा उनके जरिये प्रकाशक को।

बीकानेर (राजस्थान)

—मालीराम शर्मा

2687
कईना

क्रम

कुछ बातें जो किताबों में नहीं होती	६
कई कृत्त कृत्तों की मौत नहीं मरते	२३
नाम में क्या धरा है	३०
बिल्ली ने आत्महत्या कर ली	३७
सब एक हो जाओ	४६
जब बड़ा बागी हो गये	५१
शोमियो जो का मंदिर	६०
कुछ सवाल जो मुझमें सुलझते नहीं	८१
एक सप्ताह	८०
भीड़ खंधी होती है	८६
बेगाराम की मिट्टी प्रोफेसर के नाम	१०२
भानू की सम्पत्ति	११३
भामने सामने	११६

कुछ बातें जो किताबों में नहीं होतीं

डाक्टर अग्रवाल आए तो साथ में दो-चार और सज्जन थे। ये स्थानीय कालेज में लेक्चरर थे और मुझे इनसे कई बार मिलने का मौका भी मिला था। व्यक्तिगत भी और कालेज में भी। परन्तु डाक्टर अग्रवाल से मिलने का यह पहला ही मौका था।

भिड़ते ही मुझे परिचय में बतलाया गया कि डाक्टर अग्रवाल स्थानीय कालेज में भौतिक शास्त्र के बरिष्ठ प्राध्यापक हैं और आप सखनऊ से पघारे हैं। मैंने औपचारिकता का निर्वाह करने का पूरा यत्न किया और यह कहना नहीं भूला कि आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। मुझे अपना परिचय देने की नीयत ही नहीं आई। उनके साथियों ने सायद पहले ही उन्हें 'ब्रीफ' कर रखा था।

"तो, डाक्टर साहब तो सायद अभी आए हैं?" मैंने मुलाकात में आरम्भिकता के लिए 'टेक्स्ट बुक मेपड' से बात चालू की।

"पिछले ही हफ्ते।" डाक्टर साहब ने सखनवी मुस्कान के साथ जवाब दिया।

"पर मुझे तो डर है कि सखनऊ के माहीन में पता हुआ व्यक्ति राजस्थान की धूल को बर्दाश्त भी कर सकेगा?" मैंने आसंका व्यक्त की।

"आप सखनऊ गए हैं कभी?" मुस्कान के साथ सवाल हुआ।

"सखनऊ जाने का तो मौका नहीं मिला, पर मेरे एक धाड़ीज हैं जो सखनऊ में जन्मे और इलाहाबाद में पनपे। सखनऊ की नजानत देखी तो नहीं, पर सुनी है कि इलाहाबाद की तरफ डब करने से एक सखनवी को छुकाव हो जाता है क्योंकि इलाहाबाद में अमरुद होते हैं, सखनऊ में यर्मांगीटर रहते ही नहीं, सरदियों में सरदी रजाइयों से मापी जाती है। रात के बारह बजे भी बिना छतरी के जाना सखनवी सहजीब में बुरा समझा जाता है।"

में शायद कुछ धीर कहता कि डाक्टर साहब बोले—

“आप तो लगनऊ के बारे में पूरी जानकारी रखते हैं।”

हम सभी लोग हंस पड़े।

“पर डाक्टर साहब, मुझे तो आश्चर्य यह हो रहा है कि आपने फ़िजिक्स में छावटेरेट हासिल की, यह तो लगनवी ‘जीनिगस’ से भेल जाती चीज नहीं है।” बात में कुछ सरगर्मी लाने के लिए मैंने एक पटागा छोड़ा।

खैर, पटाने से तो हर राहगीर चौंक पड़ता है, डाक्टर साहब भी चौंके।

“यह तो कोई बात नहीं। लगनऊ में अपनी गुनिगसिटी है। भारतीय स्तर की ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की वैज्ञानिक प्रतिभा वहां पर विकसित हुई है और मान्यता भी प्राप्त हुई है। लगनऊ की अपनी शान है जिसका कोई सानी नहीं। वहां की तहजीब है। वहां की नजाकत के बारे में सुना है, पर नजाकत के साथ वहां की नफासत है, वहां का अपना ही लहजा है, बात का, सलीके का।”

डाक्टर साहब ने लगनवी नफासत के साथ-साथ लगनवी तेवर का भी हल्का ग्रहसास कराया। शायद एक लगनवी का एक लगनवी सेण्टीमेट भी होता है। मुझे अपने दोस्त की बात याद है। उसने सुनाया था कि एक लगनवी पनवाड़ी ने एक अजनबी को पान देने से इसलिए इन्कार कर दिया क्योंकि उसने एक सिंगल पान मांगा था जबकि एक रिहायशी लगनवी पान का जोड़ा खाता है और सिंगल पान खाना तहजीब के खिलाफ समझा जाता है। मेरे दोस्त के लड़के के अनुसार तो लगनऊ का पनवाड़ी जब अपने ही सामने लगनवी शान को डहते हुए देखता है तो वह तिलमिला उठता है। वह हैरान है कि इन नये लोंडों को न तो पान के जायका का पता है और न पान को मुंह में रखने के तरीके का। दिल की बात जवान पर आ जाती है:

‘बदतमीज कहीं के ! आ गए हैं पान खाने को। इनके बाप-दादों ने भी पान खाए थे क्या ? कोई शऊर नहीं।’

खैर, डाक्टर अग्रवाल के तेवर में वह तुर्र्शी नहीं थी जिसके कारण कई हो सकते हैं। परन्तु एक बात जरूर है। आदमी चाहे पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ हो, मगर एक बार किसी प्रकार की तख्ती गले में बंध जाए तो वह आखिरी दम तक उस तख्ती की लाज रखेगा। तख्ती चाहे लगनवी या बनारसी की हो, हिन्दू-मुसलिम की हो, बंगाली-बिहारी की हो, वह सब कुछ हटा सकता है, अपनी शिक्षा

व संस्कार, सम्यता का आवरण, वह अपने कपड़े तक हटाकर नंगा हो जाएगा, पर वह तस्ती जो गले में बंध गई, किसी कीमत पर नहीं हटेगी।

मैंने बात ठण्डी नहीं होने दी बल्कि जलती में पूसा डाल दिया। “डाक्टर साहब, मेरा मतलब तो इतना ही था कि ससनऊ का मिर्जाज बायराना है, प्रांति-काना है। साइन्स मेरे हिसाब से भ्रम से मेल नहीं खाता। साइन्स एक इल्म है। इल्म और भ्रम बिल्कुल दो भलग चीजें हैं जैसे कि घायुर्वेद और एलोपैथी। इल्म से ज्यादा महिमयत भ्रम की है।”

मुझे बात पूरी भी नहीं करने दी और मेरी बात की उस छोटी-सी मजलिस में भयंकर व तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इस बार डाक्टर साहब भकेले नहीं थे। उनके साथ केमिस्ट्री और जीव-विज्ञान के प्राध्यापकों ने भी सहयोग किया।

“देखिये, साहब, आप लोग मुझे अपने घर में ही पूरी बात करने की इजाजत नहीं देते, यह तो मेरी ही नहीं, भारतीय संविधान में प्रदत्त मूल अधिकारों की भी भंगहेलना है। अभिव्यक्ति का अधिकार तो हर नागरिक को है ही, क्यों डाक्टर साहब ?” मैंने हसते हुए कहा। मजलिस हस पड़ी, एक कहकहे के साथ।

“विद्वद्भ्यः अपोलोनीयो दु साइन्स हैण्ड्स, मेरी तो निजी धारणा यहा तक बन चुकी है कि साइन्स और कॉमर्स का आदमी अच्छा भफसर ही नहीं बन सकता।”

मेरी बात ने वम का काम किया। मेरी बात पूरी होने ही नहीं दी गई और इस बार की प्रतिक्रिया और भी भयंकर। कॉमर्स के लेक्चरर बगे, जो अभी तक गुटनिरपेक्ष बने हुए थे, चौकात से कूदने में देर नहीं मगी। उनका ब्लॉक एकदम ठोस। डाक्टर साहब ने मेरी बात को केवल एक निजी खयाल बताया जिसके पीछे न कोई तर्क और न कोई बुद्धिमय आधार। केमिस्ट्री वाले सज्जन को तो मेरी बात से लासा-अच्छा भक्का लगा और बायद उनकी मेरे बारे में बनी हुई धारणा ही बढ़ा गई हो। उन्होंने बड़े ही रुखे शब्दों में अपनी बात कही।

“भाप इस तरह से भी सोच सकते हैं, मैं तो ख्वाब में भी नहीं सोच सकता था।

मेरी बात का भभाका वंसा हुआ जैसा पोकरण में भारतीय धनु-परीक्षण का हुमा होगा। इस छोटी-सी मजलिस की प्रतिक्रिया बहुत कुछ वैसी ही थी जैसे कि पोकरण की प्रतिक्रिया विश्व की प्रमुख राजधानियों में हुई।

मेरी बात ने एक कण्ट्रोवर्सी गढ़ी कर दी। विज्ञान तथा वाणिज्य वर्ग के हिमायती लोगों ने एक ब्लॉक बना लिया। साहित्य और कलावर्ग का हिमायती केवल मैं ही। दो साथी जरूर थे, मगर चुप। कारण थायद यही रहे हों कि उन्हें या तो मेरी दलील में दम नजर नहीं आया या वे जानबूझकर कण्ट्रोवर्सी से बचना चाहते हों। आज के जमाने में कण्ट्रोवर्शियल आदमी बनना कोई नहीं चाहता।

मुझे भी एक तरह का मजा आने लग गया। आखिर बात में तो जरा गर्मी आए। जेब में गर्मी लाना हर आदमी के बश में नहीं होता, लेकिन बात में तो गर्मी लाई जा सकती है, इस बात का आर्ट तो मैं जानता था काफी हाउस में, गाड़ी में यात्रा करते हुए तथा टी-बलब में इस आर्ट को बहुत बार आजमाया है। जरा-सा पटाखा छोड़ी और लोग चमक उठेंगे। मैंने भी एक मुस्कराहट के साथ निवेदन किया—

“देखिए डाक्टर साहब, आप मुझे कहने का हक दें तो मैं कहूंगा कि कला का आदमी एक अच्छा अफसर बनता है।”

“आखिर आपका तर्क क्या है?” डाक्टर का आग्रह था।

“तर्क तो एक नहीं, अनेक दे सकता हूँ, मैंने निवेदन शुरू किया। “और मेरा सबसे बड़ा तर्क तो यह है कि कला का आदमी प्रतिबद्ध नहीं होता।”

“बात स्पष्ट कीजिए,” डाक्टर ने सिर हिलाते हुए कहा।

“कला का आदमी हनुमानजी की तरह होता है।” मुझे हंसी आ गई और सभी लोग हंस पड़े।

“हनुमानजी की तरह से आपका मतलब क्या है? पहलियां न बुझाइए।” केमिस्ट्री के लेक्चरर बोल पड़े।

“हनुमानजी के बारे में तो आप लोग जानते ही हैं। ज्यों-ज्यों सुरसा बड़ी, हनुमानजी बड़े। सोलह योजन से बत्तीस हुए, चौंसठ हुए और एक सौ अठाईस योजन हुए। पर सुरसा भी उसी तरह बढ़ती गई। हनुमानजी महाराज ने अगर साइन्स के फॉर्मूले पढ़े हुए होते या एक ही तरह की गणित पढ़ी हुई होती तो बस दूने होते जाते और एक स्टेज आ सकती थी जबकि हनुमानजी महाराज की रीढ़ की हड्डी से शरीर का वॉलेन्स संभलता नहीं। इसका नतीजा यह भी हो सकता था कि सुरसा और हनुमानजी दोनों ही गिर पड़ते। परन्तु जब हनुमानजी ने देखा कि सुरसा की तरह का गणित ठीक नहीं, वे मच्छर बन गए और सुरसा चारों खाने

चित। यही बात तो शेक्सपियर का फास्टा कहता है, किस समय क्या बुद्धि लगाई जाए, इसका नाम तो बहादुरी है। यही एक बात है जो एक कला का ही आदमी जानता है, विज्ञान और वाणिज्य का आदमी नहीं जानता। एक सौ भट्ठा-इस योजना की तस्वीरें से अच्छर बन जाता।" मैंने रात पूरी भी नहीं की थी कि सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े।

"आप इसको मजाक में ले रहे हैं, गम्भीरता से सोचिए। एक विज्ञान का अध्यापक कक्षा में जाता है, उसे फॉर्मूला याद नहीं, उसकी तो गाड़ी भटक गई। वह तो घाये नहीं चल सकता। दूसरी तरफ एक इतिहास का अध्यापक कक्षा में जाता है और पढ़ाना शुरू करता है, 'घोरसाहू सूरों'। उसका पाठ शुरू होता है—

"घारे बन्धो, घोरसाहू का बन्धन का नाम वा मुराद। वह बिहार में सहस-राम..."

"बीच में एक लड़का बढ़ा होता है और बोलता है, सर, उसका नाम मुराद नहीं फरीद था।

"अध्यापक ऊँचा भी विचलित नहीं होता और लड़के को बैठने का इशारा करते हुए एक बावय घोर बोल देता है—

"हाँ, कुछ इतिहासकारों का मत है कि उसका पुराना नाम फरीद था। कक्षा घायबस्त। प्रत्यक्षता घायबस्त।

"परन्तु विज्ञान का अध्यापक वह थोड़े ही कह सकता है कि यह फॉर्मूला भी सही और वह फॉर्मूला भी सही। उसके पास ऐसा 'मापन' नहीं।"

सब लोग फिर खिलखिलाकर हंस पड़ते हैं।

"हम मान गए, कला का आदमी अच्छा भक्तियर बनता है।" बाबटरभण्वाल बोले।

"मैं जानता हूँ, आप माने नहीं। आप मजाक में बात ले रहे हैं। यही चीट शेक्सपियर के साथ में हुई और अन्त में एक मूल्य पात्र के मुँह में रखकर बात कहनी पड़ी : 'लोग समझते रहे कि मैं मजाक कर रहा हूँ जबकि मैंने सही और मन्त्रों बातें ही कही'। अब, यही स्थिति मेरी है। आप मेरी बात समझ नहीं पा रहे हैं। आज की दोहरी मान्यताओं के मुँह से बात ऐसी कही जाए कि उसकी दो रनिमा निकलें। एक ही प्रश्न का जवाब 'हाँ' भी हो और 'ना' भी। यह तो कला

वर्ग का हों व्यक्ति कर सकता है क्योंकि वह प्रतिबद्ध नहीं होता है। उसके तो जेनस की तरह दो मुँह होते हैं और दोनों मुँहों से एकसाथ दो बातें कह सकता है। एक-दूसरे के कण्ठद्विपटरी। बात बिगड़ने लगे तो एक मुँह दूसरे मुँह की बात की काट कर दे।

“तुम साइन्स और कॉमर्स के आदमी नियमों की बात करते हो और जीवन में भी नियमों को लागू करने की चेष्टा करते हो। नियम मशीन पर लागू होते हैं। मशीन नियम से चलती है। उसकी गति व व्यवहार-पद्धति नियमों से आवद्ध होती है। मशीन में कल-पुर्जो होते हैं। मोटर को ले लीजिए। उसकी स्पीड अगर आपने तय कर दी तो वह तो उसी हिसाब से चलेगी। पर आदमी की गति आप तय नहीं कर सकते। आदमी मशीन नहीं है, उसके दिल है, अन्तरात्मा है। उसकी अन्तरात्मा कब क्या बोल दे, आप कुछ नहीं कर सकते। उसके खुद के बनाए हुए नियम वह खुद ही तोड़ दे यदि उसकी अन्तरात्मा चुपके से कह दे।

“आदमी नियम बनाता है तोड़ने के लिए। नियम चाहे आदमी के हों चाहे भगवान के। उसको फांसी दो या नरक। विज्ञान व कॉमर्स के आदमी तो कमिटेड हैं। यह एक फण्डामेंटल फर्क है, इसलिए आप लोग अच्छे अफसर नहीं बन सकते, नेता नहीं बन सकते।”

मैं शायद कुछ और कहता, परन्तु घन्ना चाय ले आया।

“लो, चाय आ गई। मजलिस का ‘प्री-टी’ सेशन तो खतम हुआ। अब चाय पीजिए,” मैंने प्रस्ताव किया।

“आपकी बातें भी ताजगी देने वाली होती हैं,” डाक्टर अग्रवाल कप उठाते हुए बोले।

“डाक्टर साहब, मैं आपको खुद के राज की बात बताए देता हूँ। इसी चाय की वजह से तो बातें कर सकता हूँ। मेरा तो खयाल है, समुद्र मन्थन में चाय भी निकली थी। देव और दैत्यों को चाय का महत्त्व समझ में नहीं आया होगा। इसे बेकार समझकर धरती पर फेंक दिया। चाय एक नैसर्गिक पेय है।” मैंने भी चाय की घूंट लेते हुए कहा।

“किसी चाय की कम्पनी को पता लग जाए तो वह आपको एजेण्ट बना ले।” एक कमेंट आया।

फिर एक कहकहा।

“बनो, वह तो देखा जाएगा, पर आपका भना कैसे हुआ ? मेरे लिए कोई सेवा का अवसर प्रदान कीजिए ।” मैं औपचारिक हो गया ।

“कोई मकान तो दिखाइए, क्या यों ही बैठे रहेंगे ।” डाक्टर अवगत बोले ।

“मैं तो खुद सेठ गाठिया जी की मेहरबानी से इस मकान में बैठा हूँ ।” अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए बोला ।

“मैं भी तो यही कह रहा हूँ कि गाठिया जी से हमारा भी परिचय कराइए । गाठिया जी इस बारे में पूरी मदद कर सकते हैं ।” डाक्टर साहब ने बात को और स्पष्ट किया ।

“बस कि गाठिया जी चाहें ।” मैंने एक तुरप मारी ।

“इसीलिए तो आपके पास आए हैं । गाठियाजी तो आपके हाथ के आदमी हैं ।” डाक्टर अवगत मुझे समझाने लगे ।

डाक्टर साहब न्यूट्रोन और प्रोटोन की तो बात कर सकते हैं परन्तु सेठ गाठिया जी तो एक ऐसे सेठ हैं जो न हिप्नोटाइज होते हैं न डिमोरेलाइज । कई करोड़पति इनकी जेब में रहते हैं । सब पूछो तो खमाना ही ऐसा आ गया है कि लोग देखते हैं कि आपकी जेब में क्या है । दिमाग में क्या है, कोई जानने की भी कोशिश नहीं करेगा । आपके दिमाग में आसा-आसा चीजें हो सकती हैं, पर बेमाने हैं ।

अगर आपकी जेब खाली है और दिमाग भरा हुआ है तो भी बेकार । आपकी जेब गर्म होनी चाहिए, आपकी जेब की गर्मी का कुछ भाग अगर दूसरे की जेब में जाता गया तो आपका काम बन गया । आजकल लोग जेब पर परीच लगाते हैं ताकि कोई जेब में आक नहीं सके । आजकल तो जेब का बोलबाला इस कदर बढ़ गया है कि बड़े-बड़े ग्रन्थ भी भ्रम जेबी हो गए । जब तक ये जेबी नहीं थे तो आलमारियो में बन्द पड़े थे । आलमारी में बन्द हो आते दिमाग में बन्द हो, बात एक ही है । पर जब इनके जेबी संस्करण शुरू हुए तो प्रकाशक और लेखक दोनों की जेबें भर गईं । हर लेखक यही चाहता है कि उसकी किताब का जेबी संस्करण हो । हर आदमी जब कोई नई योजनाएँ बनाता है तो उसका अर्थाल यही रहता है कि दिमागी माइडिया जल्दी से जल्दी जेब में पहुँच जाए । माइडिया जब तक दिमाग में है, सारी बात प्योरेटिवन है । परन्तु जब माइडिया जेब में पहुँच जाता

है तो बात प्रेम्बिकल हो जाती है। लोगों का ध्यान जेब की ओर रहता है। बहुत ही प्रेम्बिकल लोग तो वे होते हैं जो जेब में हाथ डाले राखे रहते हैं और आंख जिनकी दूसरों की जेबों पर लगी रहती है।

आज का सबसे पेयिंग घंटा भी जेब काटना है। परन्तु हर आदमी को यह घन्टा नहीं आता क्योंकि आजकल यह घन्टा बड़ा ही सोफिस्टिकेटेड हो गया है। आप डाक्टर हैं फिजिक्स में। आप न्युक्लियर फिजिक्स की बात जानते हैं, अणु और परमाणु की तोड़ने की बात जानते हैं। एटमिक फ्यूजन और फिशन की बात कर सकते हैं पर आप जेब काटने की बात नहीं जानते, चाहे आप डाक्टर के भी डाक्टर हो जाएं। यह बात जानता है सेठ गांधियाजी। सेठ गांधियाजी अपनी जेब काटने नहीं देता। उसकी जेब में हैं आपके नेता, आपके मंत्री, आपके सरकारी अफसर, आपका विधान, आपका न्याय। उसकी जेब में फालतू चीज कोई नहीं होती। इसलिए आप और मेरी तरफ गांधियाजी की नज़र ही नहीं पड़ेगी। क्या आप बतला सकते हैं, क्यों ?

मैंने चलते में सवाल कर दिया और डाक्टर अग्रवाल कुछ नहीं बोले। केवल सिर हिला दिया जिसका मतलब था, उनकी तरफ सेना है।

"इसका सीधा-सादा मतलब यह है कि आपका यह सोचना कि गांधियाजी पर मेरा असर है, गलत ही नहीं बल्कि बेबुनियाद है।"

"पर लोगों ने तो यही कहा," डाक्टर ने बीच में बात कह दी।

"लोगों के इतनी बात समझ में आ जाती तो आज देश की दिशा और दशा ही और होती। परन्तु आप तो सोचिए। सेठ गांधियाजी की नज़र केवल दो तरह के व्यक्तियों पर हो सकती है, अब्बल तो वे लोग जिनकी खुद की जेबें भरी हुई हों और दूसरे नम्बर पर वे लोग जो ब्लेड का काम दे सकते हैं।"

ब्लेड के नाम से डाक्टर अग्रवाल चौंके।

"चाँकिए नहीं, ब्लेड से मेरा मतलब उन लोगों से है जिनके प्रभाव व आतंक से वह दूसरों की जेब काट सकें। मसलन एक पुलिस का बड़ा अधिकारी है, कोई सेल्सटेक्स का अधिकारी। उनका सब लोगों से सीधा सम्पर्क होता नहीं। उन्हें चाहिए कुछ ओनेस्ट ब्रोकर्स। कुछ ईमानदार दलाल। दलाल का एक ऐसा घन्टा है जिसमें दलाली दोनों तरफ से ली जाती है और जायज़ होती है। कानून से मान्यता प्राप्त है। बड़े-बड़े दलाल तो दलाल स्ट्रीट में रहते हैं। लांठियाजी,

गाठिया, गाठिया, टांठिया, ततैया, मिड़ बगरह-बगरह । गाठियाजी दलाम स्टीट की तरफ मुंह करने यही बैठे हैं । जब भी किसीको कोई ईमानदार दलाम चाहिए तो वे जिससे बात करें सिवाय गाठियाजी के । गाठियाजी के कई गांठें हैं और हर गांठ एक आइसलैंड का काम करती है । हर आइसलैंड में तरह-तरह के लोग बैठे हैं । तस्करी करने वाले, ब्लैक मार्केटिंग करने वाले, प्रोफिटियर, घडल्टेशन करने वाले । गाठियाजी एक समुद्र के समान हैं । उस समुद्र में मगरमच्छ हैं, साप हैं, सीपिया हैं, मोती हैं, हीरे हैं । गाठियाजी मुंह से बात नहीं करते । उनकी तो येव है । येव मे डाल दो । येव मे से निकास लो ।

“ अब आप बताइए, गाठियाजी आप और हम से क्या बात करें ? जैसे कि मैंने पहले भी धर्ज किया था कि वे बोसते तो हैं ही नहीं । बोलने वाले हैं तो आप हैं, मैं हूँ । सामी येव वाले ही तो जीभ काम में लाते हैं । गाठियाजी से हम सींग बात भी करें तो क्या करें । हमारी येव को तो वे जाने हुए हैं कि ब्याभी है और ब्लेड का काम दे सकें ऐसी हमारी कुम्बत नहीं । हम तो उनके लटे मछली पकड़ने के घन्घे में गड़बड़ ही करा सकते हैं । उनकी दलामी देने के लिए हमारे पास कुछ नहीं है ।

“ इसलिए मेरा आपसे यही कहना है कि आपने गलत ही समझ लिया कि मेरा गाठियाजी पर असर है । गाठियाजी पर किसीका असर नहीं है । आप कहे तो मैं आपको अपने साथ लिवा ले जा सकता हूँ । गाठियाजी के घर पर बड़ी भीड़ रहती है । बड़े-बड़े मिलमंगे, चन्दासोर । गाठियाजी की सिफत तो देखो, वे बोलते-बोलते कुछ नहीं । अपने येव में हाथ डाले हुए उन सबकी मुनते हुए गूहप्रवेश करते हैं । जैसे किसीको दो मुट्ठी दाने डालकर टरफा देते हैं, तो किसीको नोटों के बण्डल देकर । गौशाला वाले, अनाथाश्रम वाले आदि कई प्रकार के भिक्षारी होने हैं । गाठियाजी की तारीफ तो यह है कि वे जानते हैं कि कौनसे गौशाला में गर्म पल रही है तो कौनसी गौशाला में सफेद मायो के बढ़ने कौनसे सफेद जानवर पल रहे हैं । गाठियाजी को यह भी मालूम है कि गौशालाएँ खतम हुई तो फिर बूचड़लाने भी खतम । अगर बूचड़लाने खतम तो खमड़े के कारखाने भी खतम । लीर, विभिन्न प्रकार के लेबल लगाए हुए भिक्षारी वहाँ होते हैं तो कुछ भिक्षारी दिन-भर की अपनी भिक्षावृत्ति व चन्दे की एकल भी गाठियाजी के यहाँ जमा कराते हैं । अगर आप कहे तो, अपने भी खजें और सेट

गांठियाजी से बात करें, परन्तु सारी वस्तुस्थिति आपके सामने है। मैंने अपनी तरफ से अपना दृष्टिकोण तथा दृष्टि प्रस्तुत कर दी। बात मोटे तौर पर है एनलाइटेड सेल्फ इन्ट्रेस्ट की।”

“गांठियाजी के बारे में आपने मुझे नई जानकारीयां दीं। गांठियाजी के बारे में सुना तो बहुत था। कहते हैं कि वे सबको चंदा देते हैं, और यह भी सुना था कि आपकी वे बड़ी कद्र करने हैं। हो सकता है कि आपने यों ही अपनी धारणा बना रखी हो। आपके कहने से पिछली बार उन्होंने कई जगह चन्दा दिया, यह तो शहर में चर्चा है।”

डाक्टर अग्रवाल ने बात पूरी भी न की थी, मुझे हंसी आ गई। “देखिए डाक्टर साहब, अगर कोई बनिया एक रुपये की छीलर देता है तो भी समझ लेना चाहिए कि इसमें कोई मतलब होगा, कोई स्वार्थ होगा वरना बनिया क्यों आपको सौ पैसे दे, गिनने का कष्ट करे। निःस्वार्थ भाव से तो वह दो कदम ही नहीं चलता। फिर एक रुपये के सौ पैसे क्यों दे ? या तो उसे खोटे सिक्के पार करने होंगे या कोई और बात होगी, जिसका अर्थ आज तक मेरी समझ में नहीं आया है।”

“इसको कहते हैं—वायस्ड आउटलुक,” डाक्टर ने निर्णय दे दिया।

“मैं भी चाहता हूँ कि मेरा निष्कर्ष गलत हो। मैंने भी कई बार आत्मावलोकन किया और आपकी तरह सोचा पर मुझे शीघ्र ही अपना निर्णय बदलना पड़ा। हाल ही की एक ताजा घटना सुनाता हूँ। गांठियाजी ने दो-चार अपने पुराने ड्राइवरों को टैक्सियां दिलवाई। पैसा दिलवाया सहकारी समितियों से, या कुछ राष्ट्रीयकृत बैंकों से। सेठजी ने उनकी आइडेंटिटी तस्दीक कर दी। इन आदमियों में से एक गणेश को मैं जानता हूँ। मैंने भी यही सोचा कि गणेश पुराना ड्राइवर है और गांठियाजी ने उसकी पुरानी सेवाओं का खयाल रखते हुए ही ऐसा किया होगा। परन्तु कुछ दिन पहले जब गणेश और उसकी टैक्सी पकड़ी गई तो सुनने को मिला कि गणेश तो सोने के विस्कुटों की स्मगलिंग में लगा हुआ था। गणेश अन्दर। टैक्सी बैंक को हाइपोथेकेटेड थी। बैंक बोली, चिल्लाई। कुछ भीतरी सर्किल के लोगों का कहना है कि गणेश व अन्य ड्राइवर गांठियाजी के लिए स्मगलिंग करते थे परन्तु ऐन वक्त पर गणेश अन्दर गया, टैक्सी के लिए बैंक रोए। पर गांठियाजी क्यों रोए ? वे तो शुद्ध हैं, साहूकार हैं। एक और दिलचस्प बात

है। गांधियाजी ने एक पोल्ट्री फार्म खोला रखा है, बम्बई में मैंने सुन रखा था, परन्तु मेरी समझ में यह बात कभी नहीं आई कि गांधियाजी जैसे व्यक्ति ने यह क्या क्यों अपनाया है? कोई सोना कि पोल्ट्री का धन्या प्रच्छा है। वहा पर बिना मुर्गा ही मुर्गियां पगडा देती हैं परन्तु जब मीठा के अन्तर्गत कई पोल्ट्री फार्मों पर रेड हुए तो पता पड़ा कि ये सारे के सारे पोल्ट्री फार्म भी स्वर्गासिग की श्रृंखला में जुड़े हुए थे। मुर्गियां पालने की जगह ऐसी मुर्गियां पाली जाती रहीं जो सच-मुच में सोना के अण्डे दे रही थीं, सोने के बिस्फुट देती रहीं, चढिया देती रहीं। अब सेठ गांधिया के नाम से चलने वाला मुर्गाखाना बन्द। उनके मुर्गाखाना तथा मोराना के अण्डे के पीछे मूल धारणा एक ही थी। सुनते हैं कि गांधिया जी ने सारी मुर्गियां छाजाद कर दी हैं। सेठजी ने वैसे कई पक्षियों को भी वैसे दे-देकर पिजड़े में डे छुड़ाया है मुर्गियां भी इस पिजड़े से छाजाद हैं।

“यह सारी जानकारीयां ही मेरे लिए नहीं हैं, परन्तु आप कुछ भी कहें सेठ गांधियाजी आपसे तो बहुत प्रभावित हैं, यह तो मेरी कम्प्लैण्ड जानकारी है, परन्तु आप इसको किस प्रकार दृष्टिगोचर करेंगे, यह तो आप ही जानें।” डाक्टर अग्रवाल अपनी बात पर अडिग।

“तो फिर आप ही मदद कीजिए। हाईपोथेसिस आपके पास है। मेरे बारे में आप जानते ही हैं। करिये फिर साइंटिफिक अनेलिसिस। कोई डाटा चाहिए तो पूछ लीजिए,” मैंने बात को दूसरा टर्न दिया।

“मैं तो बाहर की चीजें जानता हूँ, कई इनसाइड की बातें भी तो हो सकती हैं।” डाक्टर अग्रवाल ने चूटकी ली।

सभी लोग हस पड़े।

“बात तो गहरी ही होनी चाहिए जब गांधियाजी जैसे लोग आपका सोझा जानते हैं।” पास में बैठे प्रोफेसर चतुर्वेदी बोले।

“आमिर, आप लोगों के इरादे तो नेक हैं।” मैंने चलती बात ठहरी नहीं होने दी।

“इसके अलावा, आपके पास हर समय पाच-दस आदमी बैठे रहते हैं। बाहर के जाने-माने इंटेलिजन्सल लोग आपके पास बैठे रहते हैं, रात के दो-दो बजे तक। यह क्या कुछ इगित नहीं करता।?” प्रोफेसर चतुर्वेदी बोले।

मुझे थोर की हंसी छूटी। लोगों ने स्मित हास के साथ मेरा साथ दिया।

“अब सारी बात समझ में आ गई।” मैंने कहना शुरू किया, “यहीं गलती है सारे हाईपोथेसिस में। इसके इण्टरप्रिटेशन में।

“यह तो सच है कि मेरे पास पांच-दस आदमी बैठे जरूर रहते हैं। सत्रके मुसौटा भी लगा हुआ होता है, बुद्धिवादी का, प्रबुद्ध वर्ग का, नवचेतना के अप्र-दूतों का।

“मैंने अकेले में कई बार सोचा भी। मैंने अपने-आपसे सवाल किया।

“मैं क्या करता हूँ, सिवाय चाय पर चाय की प्यालियां खतम करने के, एक-दो पैकेट सिगरेट का धुआं उड़ाने के।

“बातें करता हूँ, ज्ञान बेचता हूँ, चायघरों में, अपनी बैठक में भी, बातें ही बातें, देश-विदेश की, राजनीतिक व सामाजिक मुद्दों व मसलों पर।

“मेरे घनदरभी कभी अन्तरात्मा होती थी जो दब गई होगी या चाय के निरन्तर सेवन से गल गई होगी। खैर, अन्तरात्मा का भूत रहा होगा या उसके अव-शेष। मुझे लगा कि कोई कह रहा है ‘कोरी गप्पे मारते हो, इसके सिवाय कुछ नहीं करते।’ मैं इसको ज्यादा स्पष्ट शब्दों में सुनता उससे पहले चाय की प्याली आ गई और चाय पीने लग गया और इसी दौरान एक लहर आई। दिमाग से उठी होगी। लहर की गूंज कुछ इस प्रकार की थी। हिमालय के उस पार लोगों ने चूहे मारे, मक्खियां मारीं, मच्छर मारे और हिमालय के इस पार हम गप्पें मार रहे हैं। खैर, मारने का काम तो हिमालय के दोनों ओर हो रहा है पर मारने-मारने में फर्क है और फर्क का कारण है—सांस्कृतिक पृष्ठभूमि। दो पृष्ठभूमियों के पीछे फर्क है जीवनदर्शन का।

“हिमालय के उस पार, जो मच्छर मार सकते हैं, मक्खियां मार सकते हैं, लाखों आदमियों को भी मच्छर और मक्खियों की तरह मार सकते हैं, वशर्त कि यह जंच जाए कि आदमी मच्छरों की तरह गन्दगी पैदा करते हैं। परन्तु हिमालय के इस पार, अहिंसा की पृष्ठभूमि में पला हुआ जीवन अगर कोई चीज मार सकता है तो वह गप्प ही हो सकती है।”

सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े।

“गप्प मारने से हिंसा नहीं होती। यह है एक अहिंसक हिंसा।” एक टिप्पणी।

“इसीलिए भारतीय प्रतिभा के अनुकूल पड़ती हुई अगर कोई चीज है तो वह

है केवल गप्पें मारना। हमारे पुरखे भी यही करते रहे। भण्डादश पुराण इस बात की साक्षी स्वरूप हैं।" मैंने डेर पूरी कर दी।

"भापने तो खूब खोजपूर्ण बात कही।" प्रोफेसर चतुर्वेदी की टिप्पणी।

"भाज तो खोज ही खोज हो रही है। ऐसी खोजें जिनका पहले कोई खुर-खोज ही न था। ताजमहल साहजहा ने नहीं बनाया, मीरा के भजन मीरा के नहीं बल्कि उसकी ननद के हैं। परन्तु मेरी तो हकीकत-व्यानी है। मुझे तो उस दिन के बाद कभी किसी अन्तरात्मा जैसी खोज ने तग नहीं किया और मैं तो यही मानकर चलता हूँ कि यही इस देश की 'जीनियास' है --।" मैंने बात पूरी भी नहीं की थी कि डाक्टर अय्याल बोले पड़े।

"कोई और खोज करे भी तो क्या करे, देश में स्कोप नहीं।"

"हो भी तो हम उस स्कोप को मिटा देंगे।" मैंने नया छरी छोड़ा।

"यह कैसे?" डाक्टर के चेहरे पर अश्चर्य बना हुआ दिखाई दे रहा था।

"काम की बातें तो कामसूत्र में रह गईं। हमें काम से कुछ नहीं लेना।" मैंने उदासीनता के साथ बात कही।

"भाप बाहे जो कहो, इस आश्चर्य बेकारी के देश में काम है ही कहा?" डाक्टर ने भी उसी टोन में बात कही।

"देखो, डाक्टर साहब, पिछली रात भी हम इसी मुद्दे पर बात कर रहे थे। चलते-चलते बात रुकी भी इसी मुद्दे पर कि काम नहीं है। मुझे एक मजाक सूझा। मैंने कहा कि लोग पीट्टी फार्म खोलते हैं, मुर्गे-मुर्गिया पालते हैं परन्तु मेरी तो इच्छा है कि एक बिल्लियों का फार्म खोला जाए। बिल्लियों को ट्रेनिंग दी जाए। फिर एक पोषणा कर दी जाए कि जिन्हें चूहे संग करते हैं, वे हमारी बिल्लियों की सेवा ले सकते हैं। सर्विस चार्जेंड फकत दो रुपये चौबीस घण्टे के। अमरीकी सूचना के अनुसार इस देश में चूहों की जनसंख्या आदमियों से चार गुनी है और चूहे उतना ही घान खा जाते हैं जितना कि इस देश के आदमी। हर आदमी चूहों से संग है। इस महंगाई के दौर में दो रुपये देकर हर कोई अनाज भी रखा करना चाहता।

"अगर सारे चूहे मर जाएं या चूहों की जनसंख्या बन्दोल में घा जाए तो करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत हो सकती है। भिनारी की तरह दूसरे देशों से अनाज मांगने की ज़रूरत से छूटकर हो सकता है, वना तो इस देश की

हरित क्रांति को चूहे ही खा जाएंगे। इन सब चीजों को मयाल में रखते हुए बिल्ली पालन के प्रोग्राम को राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया जाएगा तो देश की अर्थव्यवस्था ठीक हो सकती है। हर एक बेकार नौजवान अगर बिल्ली-पालन में लग जाए तो दिक्कत क्या है। बिल्लियों को फीट की आवश्यकता नहीं होगी। बिल्ली का फीट चूहा। यह सारी योजना व्यवहार्य है और इनमें फाइनेन्स की भी जरूरत नहीं। परन्तु कितने नौजवानों के दिमाग में यह बात स्ट्राइक हुई ?”

“यह तो वस्तुतः क्रांतिकारी योजना है।” सारी मजलिस बोल उठी।

“आप तो बड़े भारी अर्थशास्त्री है, आपको मिनिस्टर बनाना चाहिए।” डाक्टर ने मुभावा दिया।

“मैं भी आपकी बात की ताइद करता हूँ। मैंने भी अपना वोट अपने को ही दे दिया। पर एक गजब हो जाएगा...” मुझे आगे की बात कहने नहीं दी।

“वह क्या ?” डाक्टर की उत्सुकता जागी।

“उस हालत में मैं आपको यहाँ नहीं मिलूंगा।”

“आप तो कोठी पर मिलेंगे।” डाक्टर बोला।

“वहाँ भी नहीं,” मेरा जवाब था।

“तो फिर आप कहाँ चले जाएंगे ?” डाक्टर ने मेरी तरफ देखा।

“मैं चला जाऊंगा गांठियाजी की जेब में।”

एक बार फिर जोर का कहकहा लगा।

अनिच्छता पर हसित प्रश्न ?

कई कुत्ते कुत्तों की भीत नहीं मरते

मैं अक्सर उठाना हूँ। मैं रोटी खाने और अक्सर पढ़ने में बड़ी जल्दी करता हूँ। सटापट रोटी खा लेता हूँ।

कई बार तो मेरी पत्नी बड़े ही मोठे शब्दों में बड़ी कड़वी बात कह देती है। कोई किसीको कहे कि सुम पिछले जन्म में कुत्ते थे तो उसका जवाब हाथापाई के सिवाय कुछ नहीं हो सकता, बशर्ते कि सुनने वाले में जरा भी स्वाभिमान हो। पर मैं यह बात कई बार मुन चुका हूँ। शुरु में तो मैं चमका और भुर्रकर बोला कि जैसा खाना जिस तरह से खिलाया जाता है, उसको मैं खा लेता हूँ, यही मेरा कुत्तापन है न। खैर, यह तो पुरानी बात हो गई। अब तो मैं इस तरह के रिमार्क और खाने सटासट निगल जाता हूँ। खाना निगलता रहता हूँ और साफ-साफ बात भी। बचाने से उसका कड़वापन जीभ को बरदास्त नहीं। अचेतन में इसके पीछे कारण यही रहा हो कि जीभ अस्वादिष्ट खाने को हलक की तरफ धकेल देती हो। भोजन नली में से होता हुआ खाना गड़गड़ करता पेट में। खैर, मेरा पेट मेरी जीभ से कहीं ज्यादा अच्छा है। मैं अपनी घादत का शिकार। अक्सर की खबरें भी इसी प्रकार निगलता हूँ। न कभी चबाता ही हूँ और न रस ही लेता हूँ। हो सकता है कि खाना और खबरों में कोई स्वाद ले सके, ऐसी मेरी रसना न हो। मैं घादी, मेरा पेट घादी।

सब कुछ निगले जाने के बाद मैंने कई बार अकेले में सोचा कि कुत्ता इतना जल्दी क्यों खाता है? क्या वह धीरे-धीरे चबाकर नहीं खा सकता? अगर ऐसा वह कर सकता होता तो उसकी आंतों को दिक्कत नहीं होती, कुत्ते का स्वास्थ्य ठीक रहता, दीर्घायु होता। परन्तु कुत्ता नासमभी से मैगी और असमय में मर जाता है। इसी वजह से कोई भादमी जब दग से नहीं मरता तो लोग कहते हैं कि कुत्ते की मौत मर गया। लोग जीने में कला डूबते हैं। लोग 'लाइफ स्टाइल' की

बात करते हैं। परन्तु कुत्तों की तो एक ही मरण-शैली होती है—‘ट्रेय स्टाइल’ जिसको वे बड़ी मूर्खी से जानते हैं। हर ‘माइन्सूट डिटेल’ का धायद वे इतना बखूबी पालन करते हैं कि उनका एक ट्रेड मार्क हो गया, एक पेटेंट बन गया। यह पेटेंट मशहूर भी इतना कि बहुत सारे आदमी भी आजकल इस पैटर्न पर मरते हैं। सहानुभूति में दो शब्द कहने का भी एक ढर्रा प्रचलित हो गया : आदमी तो बहुत अच्छा था, नेक था परन्तु हालात ने इन प्रकार मजबूरियां थोपीं कि बेचारा कुत्ते की मौत मरा। इस तरह की संवेदनाओं तथा शोक-सन्देशों के बीच बहुतसे लोग कुत्ते की मौत मरते हैं। मरने वालों की संख्या भी खूब बढ़ गई जैसे कि मरने का भी कोई नया फैशन चल पड़ा हो। अलवत्ता, यह बात जरूर है कि ‘होट डाग्ज’ लाने वाले लोग इस प्रकार की मौत मरते कम देखे गये।

रात्रि में ज्योंही कुछ कुत्ते जरा जोर से ‘हू-हू’ करने लगते हैं तो मेरी पत्नी को बड़ी चिन्ता होती है। अगर मैं सोया हुआ भी होऊं तो भी वह मुझे जगाकर कहेगी “देखो तो सही, कुत्ते रो रहे हैं, कोई बड़ा आदमी मरने वाला है।” मैंने उसे कई बार समझाया कि जब कोई बड़ा आदमी मरता है तो कुत्ते नहीं रोया करते, उसके रोने के लिए बहुत सारे लोग होते हैं। सारा देश रोता है, झुंडे झुक जाते हैं, रेडियो पर चलते प्रोग्राम रुक जाते हैं, नये प्रोग्राम शुरू हो जाते हैं, मातम की घुनें बजने लगती हैं। इसलिए जब कुत्ते रोते हैं तो समझ लो कि बड़ा आदमी तो नहीं मरेगा। तुम्हारी आशंका बेवुनियाद है।

“कोई बहुत बड़ा आदमी न सही, छोटा-मोटा नगर-स्तर का आदमी हो सकता है, आखिर इतने सारे कुत्ते बेमतलब थोड़े ही रोते हैं! रात को ऐसे बेवक्त पर। जरा सोचो, कोई न कोई कारण तो होगा ही।” मेरी पत्नी भी ज़िद पकड़ लेती है।

मेरी पत्नी में एक भारतीय नारी के सभी गुण हैं। उनकी फहरिस्त बनाना तो मुमकिन नहीं। उसमें तो गुण ही गुण हैं सिवाय दो छोटे-से नगण्य अवगुणों के—हिये में उपजे नहीं, कहना किसीका माने नहीं। परन्तु यह दुर्गुण रहे नहीं, जैसे कि बीड़ी पीना, पान खाना। मुझे उसके ये तथाकथित दुर्गुण खले भी नहीं, परन्तु आज उसकी ज़िद ऐसी लगी कि जैसे कि मेरी कलाई मरोड़ी जा रही है। मुझे झुंझलाहट आई। मैं बोला—

“तुम तो इस तरह से पूछ रही हो जैसे कुत्तों ने मुझसे सलाह करने के बाद

ही रोना-धिल्लाना शुरू किया हो। धादमी के घरने से तो उसके घरवाले रोते हैं, उसके रिश्तेदार रोते हैं। कई धादमी कर्जदार मर जाते हैं तो उनके पीछे वे रोते हैं जिनके रुपये दूबे। किसी सेठ का दिवाला निकल जाए और वह मर जाए तो उसके पीछे वे सब लोग रोते हैं जिनके रुपये दूब गए। परन्तु कुत्ते धादमी के लिए किम रिश्ते के नाते रोयें, मेरे समझ में आने वाली बात नहीं है उनकी अपनी ही बात होगी।" मैंने अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी।

"पर देखो, ये कुत्ते सब भी रो रहे हैं मुझे डर लग रहा है, यह कुत्ता का रोना बहुत ही भयानकशुभक है। जनता में सुख-शांति नहीं रहेगी," उसने अपनी रट को नई सज्जावली दे दी।

"क्या होता है रोने से ! सारी जनता रो रही है, सिर घुन रहो है कि चीजें मिलनी नहीं, बीमर्तें बढ़ रही हैं। इतने सारे जुनूस, इतना छारा धोर-सायापा। मगर क्या भस्तर हुआ बहो ? कोई चीज खोई कहीं ? कोई हुआ बजापात बहीं ? छारा देश रो रहा है और जनता बिल्सा रही है—वाहि माम् वाहि माम्। परन्तु कहीं जू भी रेंगी ? मगर चन्द कुत्ते रोते हैं तो क्यामत धा जाएगी। प्रलय मच जाएगी, यह है सुन्दर मोचना। कुत्ते रोते हैं तो रोयें, मैं तो उनके पास आने से रहा और म धनुनय-विनय बक्या कि तुम रोना बंद कर दो। अगर कुत्ता में जरा भी समझ होगी तो उनकी समझ में यह बात आ जानी चाहिए कि इस देश में रोने से या भौंकने से कोई बौंकने वाला नहीं है।" मैंने अपनी तरफ से डांट पिना दी।

मेरी पत्नी को मेरा डांटना भी भौंकना ही लगा हो। वह चुप। थोड़ी देर बाद कुत्ते भी रोने से रुक गए।

इन कुत्तों की वजह से मेरी नींद हराम हो गई। मैंने लिहाफ खींच लिया और मैं ऐसा धनुमस करने लगा कि मैं एक कैपसूल में बन्द हो गया हूँ मेरा कुत्ता तथा अपनी पत्नी से सम्पर्क मूत्र भट गया। मैं सोचने लगता हूँ।

कुत्ते क्यों रोते हैं ? धादमी क्यों और कब रोता है, यह तो समझ में आता है, परन्तु वे क्यों रोते हैं ? मैं ज्योंही इस विषय पर सोचने लगता हूँ तो समा-धान तो नहीं मिलता और पुराना सवाल पुराने कर्ज की तरह रिगमू हो जाता है।

कुत्ता जल्दी क्यों मरता है ? दरता धादमी जल्दबाजी करता है, हो सकता

हे कि कुत्ता भी डरता हो ? डरता हुआ जल्दबाजी करता है, यह तो तथ्य है पर कुत्ता किससे डरता होगा ? मैं सोचने लगता हूँ ।

डरता आदमी लड़ता है, यह तो मेरा अनुभव है ।

आदमी आदमी से डरता है, अतः आदमी आदमी से लड़ता है ।

कुत्ता कुत्ते से डरता है अतः कुत्ता कुत्ते से लड़ता है । यह तो समझ में आई हुई बात है । यही नहीं । भेड़ भेड़ से लड़ती है । गाय से गाय लड़ती है । लिहाफ के अन्दर मैं देखता हूँ कि भैंस से भैंस लड़ती है, मुर्गे से मुर्गा और तो और शांति का प्रतीक कबूतर कबूतर से लड़ता है । चोंच भिड़ाता है । मैंने कई बार शांति के मसीहाओं को अपने कमरे में कुश्ती करते हुए देखा है । चोंचों से चोंचें लड़ाते हुए, पंखों को फड़फड़ाहट करते हुए । मैंने बीच-बचाव के दौरान देखा कि लड़ाई का मुद्दा या तो कुछ दाने होते हैं या कोई कबूतरी । फिर बेचारे कुत्ते ही बदनाम क्यों ? कोई दूसरा कुत्ता न खा जाए, इसलिए कुत्ता जल्दी-जल्दी खाता है । कुत्ता दरियादिली दिखाए तो किस वृत्ते पर ? कुत्ता भी लड़ता है, पर वे ही दो मुद्दे, रोटी का टुकड़ा या हड्डी का टुकड़ा, या कोई कुतिया ।

कुत्ते रोते क्यों हैं ? सवाल सुलझाने से पहले नींद आ जाती है ।

सुबह उठता हूँ तो देखता हूँ कि कैकेयी तो अभी तक कोप-भवन से बाहर ही नहीं निकली है ।

कुत्तों ने पति-पत्नी के बीच दरार डाल दी है । मैं इस विडम्बना पर विचार करने लगता हूँ ।

मैं सुबह का अखबार लेकर बैठ जाता हूँ । चाय की प्याली पास में । लवरेज । चाय खतम होने के पहले अखबार निगल जाता हूँ । अखबार निगल जाने के बाद एक पत्रिका के पन्ने पलटने लगता हूँ । यकायक मेरी भागती हुई आंखों में अटक जाती हैं कुछ पंक्तियाँ ।

‘कुत्तों का राजसी जीवन जिसके लिए इन्सान रक्षक करे...’

कोई कुत्ते-पालन का फार्म है । आला नस्ल के कुत्ते । उनके बच्चों का पालन-पोषण होता है वातानुकूलित कमरों में ।

मैं कुछ चित्र देखने लगता हूँ । छोटे-छोटे पिल्ले, फोम के गद्दों पर । नोकर-चाकर सेवा में । ओढ़ने को रजाइयाँ, खाने-पीने को पोष्टिक आहार । डाक्टरों की पूरी देख-रेख ।

मैं पूरा विवरण पढ़ने में लगता हूँ। इन पिस्तुलों की परवरिश जिस राजसी ढंग से की जाती है, उसे देखकर तो हर आदमी की इच्छा होने लगती है कि कान ! इस मनुष्य-योनि के बजाय तो इन कुत्तों जैसी कोई योनि मिली हुई होती तो कितना अच्छा रहता !

मनुष्य-योनि भी खान-योनि के सामने झुक भारती है।

पत्रिका रख देता हूँ।

ये कुत्ते के बच्चे। उन्होंने पिछले जन्म में महान् तपस्या की होगी।

ये कुत्ते बड़े मेधावी हैं। कुत्तों के इतिहास में भी कई धानदार पृष्ठ हैं। सारे कुत्ते मेधावी ही रहे हों, ऐसी बात नहीं। गजब की किस्मत भी पाई बहुतों ने। मेरी स्मृति में कई कुत्ते उभरते हैं। एलीजाबेथ टेलर का नामो कुत्ता जिसकी शादी में इतना खर्च हुआ कि उसकी शादी के सामने राजकुमारी ऐन की शादी फीकी लगती है। उसकी शादी का वह जघन मनाया गया कि कुछ कहा नहीं जा सकता। क्या कमाल की किस्मत पाई है उस कुतिया ने, जिससे एलिजाबेथ का कुत्ता मुम होने जा रहा है !

कहते हैं कि एक खान-प्रदर्शनी में लीजो का कुत्ता प्रदर्शित हुआ तो लाखों में उमड़ पड़ी उस कुत्ते को घूमने के लिए। मानिक ने देखा कि ये मेरे कुत्ते को बुन्दन के बहाने बाट जाएगी। कुत्ते के बुन्दन की फीस लगाई गई। जब एक बुन्दन की फीस दस डालर रखी गई तो हजारों में मेमों के हाथ अपने पत्तों की रस्मिया ढोली करने लग गए। लीजो फिर भवराई। फीस बढ़ाकर भी डालर की बुन्दन कर दी गई तो भी दस में में मैदान से नहीं हटी।

यह भी किस्मत है कुत्ते की। कोई प्रिन्स खामिय क्या करे ! ऐसा कुत्ता कौन-सी मौत मरेगा, क्या कोई ज्योतिषी बतला सकता है ?

यह तो एक ही पृष्ठ है। कुत्तों के इतिहास में ऐसे कई स्वर्णिम पृष्ठ हैं। जूनागढ़ के नवाब साहब को इतिहासकार चाहे किसी तरह याद करे, परन्तु जब कोई कुत्तों का ऐतिहास लिखेगा तो उसके ऐतिहासिक क्रिया-कलापों को नजर भ्रन्दाज नहीं कर सकता। उसके राज्यकाल में कुत्तों की शादी के शुभ अवसर पर राजकीय कार्यालयों में अवकाश रहा। झूठा बना हुआ कुत्ता जब बैण्ड बाजी के साथ जूनागढ़ की सड़को से गुजरा होगा तो दर्शकों ने उस कुत्ते के भाग्य की सराहना की होगी। और, कितनी ही देखिये ने उस भाग्यशालिनी

कुतिया की तुलना में अपने-आपको हेय समझा होगा। अगर चोयस का सवाल होता तो बहुत मुमकिन है, बहुत सारी देवियां अपने संचित पुण्यकर्म और कौमार्य का श्रम्य देकर भी इस प्रकार की कुतिया बनने में अपना अहोभाग्य समझतीं।

अगर ये कुत्ते हैं तो जनना जीना और मरना भी बहुत कुछ ऐसा है जो मनुष्य को नसीब नहीं होता।

कई कुत्तों ने कई लड़ाइयों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और सरकारी तौर पर इनकी सेवाओं का उल्लेख किया गया।

सारी बातों से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि सब कुत्ते एक-से नहीं होते। कुत्तों में भी वर्ण-व्यवस्था होती है। कई कुत्ते कुलीन होते हैं। इसकी जानकारी लोगों को नहीं है। यही एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। कुत्ता धर्म का रूप होता है। यह तो धर्मराज ने भी माना है। कुत्ता और धर्म साथ जाते हैं, बाकी सब पीछे छूट जाते हैं।

एक फ्रांसीसी राजकुमारी को तो आदमी नाम से इतनी चिढ़ हो गई थी कि वह तो कुत्तों की जाति पर ही फिदा थी।

कुत्ता और आदमी के गुणावगुणों की तुलना की गई तो सभी लोग एक ही निष्कर्ष पर पहुंचें—

कुत्ता आदमी की हर ट्रिक सीख सकता है सिवाय एक चीज के। उसे खिलाने वाले हाथ को काटने की 'ट्रिक' नहीं आती। लोगों ने खूब सरपच्ची करके देखा। आदमी का इसमें कोई सानी नहीं।

कुत्ते की जाति जिस दिन लोप हुई, वफादारी नाम की चीज भी लोप हुई। यह एक भविष्यवाणी है।

मैं एक आन्तरिक खुशी अनुभव करता हूँ। मेरी आज तक की धारणा बदल जाती है। न कुत्ता हेय और न कुत्तों की तरह मरना व जीना। इन सब चीजों के बावजूद भी मेरी पत्नी का प्रश्न एक 'आउटस्टैंडिंग क्लेम' की तरह खड़ा है।

कुत्ते क्यों रोते हैं? क्यों चिल्लाते हैं? सवाल सरल करने के लिए मैं एक सवाल उठाता हूँ—आदमी भी तो रोते हैं? वे क्यों चिल्लाते हैं? आदमी तो देवता बनने का दम भरता है। आदमी का तो रोना शायद यह है कि आदमी और आदमी के बीच भेदभाव क्यों? रंगभेद क्यों? सब आदमी बराबर हैं तो कुलीनता का फिर आधार क्या?

शायद यही बातें कुत्तों के दिमाग में हों तो। घालिर भादमी और कुत्ते में कोई मूलभूत फर्क तो है नहीं। सब कुत्ते बराबर हैं, क्या साहब का, क्या सड़क छाप।

प्रतसेशियन, डेरियर, पोमेरियन बगैरह जाति-भेद बेमानी हैं। हो सकता है सड़क के कुत्तों ने रात में सलाह कर ली हो। और उन्होंने अपने विरोध के स्वर को रख दिया हो। सीपे कार्यवाही की बात बल रही हो। मगर मेरी पत्नी समझती है, कुत्ते रोते हैं। रोष के स्वर को रोने-झोने के सिवाय और कोई धर्या नहीं देते। मेरी समझ में बात आ गई।

मैंने उसे आवाज दी—आओ, तुम्हें समझाऊँ कुत्ते क्यों रोते हैं।

उसने मेरी तरफ देखा, मुझे लगा कि वह गुर्राएगी।

इसी बीच भली से कुत्ते फिर भौंकने लगे। ऐन वक़्त पर कुत्तों ने बनी बात बिगाड़ दी। कुत्तों का यही शोष है। समझौता नहीं करने देते।

नाम में क्या धरा है

नोपा ने चाय लाकर रख दी और चुपचाप खड़ा हो गया, शायद इस अंदाज से कि शायद वह अपनी बात कहने के लिए किसी उपयुक्त अवसर की ताक में हो।

“और महाराजा !” मैंने चाय की प्याली उठाते हुए कहा।

नोपा एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, जिसके रिटायरमेंट में कुछ ही महीने बाकी रह गये हैं। सभी लोग उसे महाराज के नाम से सम्बोधित करते हैं। ऋषियों की सन्तान नोपा आज की सरकारी चतुर्वर्ण-व्यवस्था के अनुसार शूद्र हो गया। पाण्डित्य और विद्वत्ता कौनसी पीढ़ी में नोपा परिवार से मुख मोड़कर चले गये, पता नहीं, परन्तु ‘महाराज’ की पुश्तैनी टाइटल उससे छीनी नहीं गई, जबकि बड़े-बड़े महाराजा लुप्त हो गये और एकमात्र बचा हुआ महाराजा एअर-इंडिया में व्योम-परिचारिकाओं के साथ मजे कर रहा है और आसमान में उड़ता रहता है। महान पूर्वजों के वंशज होने के गौरव की अनुभूति भी उसे यदा-कदा होती रहती है जब श्राद्ध-पक्ष में या अमावस-पूनम के रोज उसे खाने का आमंत्रण मिल जाता है। साथ में दक्षिणा भी। खैर, कुछ भी समझो, लखनऊ के तांगे चलाने वाले नवाबजादों से तो नोपा महाराज का इतिहास किसी भी माने में घटिया नहीं है।

“तो, साहब, मेरे लड़के का क्या किया ? आपकी तो ज़रा-सी जुवान हिली और हमारा भला हो गया। आज़ाद हिन्दुस्तान में ‘आई. ए. एस. बनना आसान है, परन्तु एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी बनना टेढ़ी खीर है। पंचवर्षीय योजनाओं के लिए साधन जुटाने के लिहाज से सरकार के लिए चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के पद के सृजन पर रोक लगाना आवश्यक हो गया था। ऐसी हालत में योग्यता के आधार पर पद पर नियुक्ति होना असंभव है। लोग इसके लिए मिनिस्टर्स की

चिट्ठियाँ जेब में डाले हुए झूमते हैं। फिर ऊपर से टेलिफोन घलग। "नोपा ने नये-तुले धर्मों में निवेदन किया।

"कैसा है तुम्हारा लड़का ? तुमने पूरी बात तो बताई ही नहीं थी।" मैंने चाय की चुस्की लेते हुए कहा।

"कैसा है, समझ लीजिए धरजन जैसा ही फरजन होगा।" नोपा ने मुस्करा-हट के साथ बात को घाने खींचा।

यह कहावत तो मैंने बचपन में सप्ताह बाद में भी बहुत बार सुनी थी, परन्तु आज तक मेरी समझ में नहीं आई कि यह 'फरजन' कौन था। चलो, 'धरजन' तो धर्जुन ही होगा। महान पांडव का अष्टमस्क रूप, परन्तु यह फरजन कौन था, समझ में नहीं आया। इसपर कई बार सोचा भी कि फरजन महाभारत के कौनसे पात्र का नाम हो सकता है। कुछ घन्टों बाद बात में भूल पड़ गई। परन्तु नोपा के मुँह से आज जब यह बात सुनी तो बात का मुँहा तो झूल गया और पूछ बैठ।

"महाराज, यह फरजन कौन था ?"

"यह तो आपके भालूम होगा। पढ़े-लिखे तो आप हैं। पढ़ा-लिखा धार्मिक ही बात का खुर-खोज निकल सकता है, बही भाटा हो तो सुलझ सकता है। मैं जाति का बाह्य हूँ मगर पूरा घंगूठाछाप, एक चतुर्यं श्रेणी कर्मचारी। मेरे पूर्वजों के हाथ में कलम रही होगी पर मेरे हाथ में है झाड़ू। मैंने तो बात सुन रखी थी, सुनी-सुनाई बात आपको सुना दी। आप जानें धरजन और फरजन में क्या रिश्ता होगा। मेरी मोटी धकलसे तो कोई नखदीकी रिश्ता होना ही चाहिए।"

नोपा ने एक सटीक व्याख्या कर दी।

"बात की समझना चाहिए ठेठ उसकी जड़ में जाकर। ऐसे कैसे कोई बात कह दे। तमाशा घोड़े ही है महाराज।" मैंने एक शाम सहजे में बात कही।

"तब तो हम जैसे लोगों का जीना मुश्किल हो जाएगा," नोपा बोला।

"कितन तरह ?" मुझे आश्चर्य हुआ।

"यह इस तरह," नोपा ने कहना शुरू किया, "कि आप मान लीं पृथ्वी लगे कि नोपा का क्या मतलब हुआ ? आपके हिसाब से तो सप्ताह-छा मन्त्रव यह हुआ कि जब मेरा नाम जोना है तो मुझे नोपा शब्द का अर्थ भी भालूम होना चाहिए।"

विनोद को पुट देने की कोशिश की।

“फिर वही फरजन। यह फरजन नहीं फर्जन्द है, रास फारसी का बन्द और तुम चिल्लाये जा रहे हो फरजन फरजन।” मैंने एक बँधाकरण की तरह बात की।

“क्या फर्क पड़ता है। राम-राम कहो या मरा-मरा, भाव शुद्ध होना चाहिए।” नोपा ने एक सफाई पेज की।

“नहीं महाराज, हर शब्द का अर्थ होता है, उसका मतलब होता है।” मैं अपनी बात पर डट गया।

“तो फिर मेरे नाम का भी अर्थ होगा?” नोपा ने मेरी तरफ देखा।

“होगा क्यों नहीं। कोई शब्द निरर्थक नहीं होता।”

“तो फिर मेरे नाम का ही अर्थ बताइए। अट्ठवन साल से यह नाम मेरे से चिपका हुआ है, एक भूत की तरह, पर मैंने यह कभी नहीं सोचा कि मेरे नाम का भी कोई अर्थ होगा। यह तो एक बन्द कमरे की तरह से रहा जिसे मैंने कभी खोला नहीं। एक बन्द गद्दरी जिसे मैं ढोता तो रहा पर यह देखने की कोशिश कभी नहीं की इस पिटारे में क्या है? मैंने तो आज तक यही समझा था कि नाम एक नकेल है, लगाम है, एक तरह का जुआ है। ऊंट के लिए नकेल एक इशारा है। घोड़े के लिए लगाम। वैसे ही आदमी के लिए नाम। एक इशारा हुआ, नकेल खींची कि ऊंट ठहर गया। लगाम खींची कि घोड़ा ठहर गया। किसीने आवाज लगाई, ‘नोपा महाराज’ और मैं ठहर गया। पर जब आप कहते हैं कि नोपा का भी अर्थ होता है तो मेरी इच्छा होती है कि जानूँ कि वह कौन-सा अर्थ है। मैंने नाम का बोझ ढोया, पर अर्थ की बात सोची ही नहीं। हाँ, तो फिर क्या अर्थ हुआ?” नोपा की जिज्ञासा भड़क उठी।

“तुम्हारे नाम की सन्धि तोड़नी पड़ेगी, नोप का मतलब हुआ न+उप यानी नोप या नोपा। इस हिसाब से नोपा का मतलब हुआ कि तुम्हारे जैसा कोई नहीं, यानी बेजोड़, अनुपम, अद्वितीय, बेमिसाल, बेनजीर, फडदी, लासानी।” मैंने इतने सारे पर्यायवाची दे दिये जितने कि शायद अमरकोश में भी नहीं दिये गए हों।

“मेरे छोटे-से नाम के इतने अर्थ हैं। अगर मेरे मां-बाप को इतने अर्थों का पता होता तो वे शायद इतना बड़ा बोझ वाला नाम मेरे सिर पर नहीं रखते। देखादेखी में गलत नाम घर दिया गया।” नोपा महाराज बोला।

“तुम बेजोड़ हो, महाराज ।” मैं बोला ।

“रमने तो कोई बात नहीं । मैं इन माने में तो बेजोड़ हूँ कि मेरे जितने बड़े जुने किसीके नहीं आते । कोई सम्पत्ति मेरे साथ के जुते नहीं बनाती । मोची तो झगड़ा करके घर से जुते छोड़ चुका तो उगकी ही रोना पड़े । अब तो उमर का निहाल का जाता है बर्ना बिना देसगी जिये कभी किसी मोची ने मेरे जुते नहीं बनाये । यह है मेरा रिवाज ।” मोपा ने हंसी के साथ बात बही ।

“यह तुम्हारे नाम का ही घर है ।” मैंने भी एक लुका बिगा दी ।

“घर सोच रहे-मिसे हैं, साथ मोचों के चार घातें होती हैं । अभी कुछ दिन पहले एक हाथ की रस्ता देतने वाला मिना घोर हाथ देगकर बहने लगा कि तुम्हारी भाग्यरेला खोरदार है । मुझे घरदार ही घरदार हनी जाने लगी घोर घर में मुझने रहा न क्या घोर कह ही दिया कि मेरी भाग्यरेला तो खोरदार सब मानू जबकि मेरी भाङ्गू मोने की हो जाये, बर्ना तो रोड भाङ्गू सगाने वाला तकदीर की भी भाङ्गू-नोंछकर रग देना है । यह भी दंगी तो लही कि इस भाङ्गू की तकदीर में भी मोने का होना निगा है कि नहीं । हस्तरेगा देगने वाला गज्जग फिर मे मेरा हाथ देतने लगा । रेगाघों में तथा रेगाघों के बीच छुपी हुई तकदीर देगने लगा घोर कुछ देर बाद बोला कि घन्गी भाग्यरेला के बावजूब भी हथेली के बाँबाँधीन एक गहड़ा है घोर तकदीर जाकर गहड़े में पड़ गई । मुझे उसकी बात जम गई । हथेली के गहड़े के घसाया और भी गहड़े हैं जिन्हें भरने की मैंने कोसिग की, जिन्ही-अर । पर सगड़े तो नहीं भरे घोर अब तो गालों में भी गहड़े घोर पड़ गये ।” मोपा महाराज का स्वर गम्भीर हो गया ।

“महाराज । तुम्हारा नाम तो खोरदार है, यह मैं कहता हूँ ।”

“नाम में क्या धरा है । नाम में कोई बारुद होता तो कभी का पटाणा चल गया होता जो घात तक समर नहीं दिया गया, अब क्या होना है ?”

“महाराज, तुम्हारी बात की तो शेषगरियर ने भी कहा है, जब उसने कहा विनाम में क्या धरा है, गुलाब की बाहे जिस किसी नाम से भी पुकारो, गुलाब तो गुलाब ही रहेगा, गुलम्ब देगा रहेगा....”

मैंने बात पूरी भी नहीं की थी कि मोपा महाराज खोर से हलने लगा । मुझे लगा कि मोपा वहीं वागम तो नहीं हो गया है । उसके दिमाग पर एक प्रेशर तो था ही । मैं उगके चेहरे की घोर देगने लगा ।

“महाराज, ऐसे क्या मिल गया जो इस तरह से हँसने लग गये।” मैंने कहा।

“कुछ नहीं, कुछ नहीं।” नोपा ने हँसी रोकने की कोशिश की।

“ऐसे नहीं, महाराज, बात बताओ।” मेरा भाग्रह जारी था।

“आप कह रहे थे कि हर शब्द में एक अर्थ होता है। नाम में भी अर्थ होता है और इसी बीच शेक्सपियर कूदकर आ घमका और कह दिया कि नाम में क्या घरा है। यानी पहले वाली बात तो हों गई ‘काता कूता कपास’। पढ़े-लिखे लोगों की बातें इसीलिए तो अनपढ़ों की समझ में नहीं आती। घोड़ा और गदहा दोनों तैयार रखते हैं। पता नहीं किस समय किसको किसपर बैठा दिया जाये।”

मैं नोपा महाराज की आँखों में देखने की कोशिश करने लगा, परन्तु महाराज ने आँखें नीचे की और बाहर निकल गया।

मैंने नोपा को कमरे में भाड़ू लगाते हुए बहुत बार देखा है। वह भाड़ू से समेटता हुआ कूड़े-कचरे को एक जगह इकट्ठा कर लेता है। सारा कूड़ा-करकट सिमटकर एक जगह आ जाता है।

मुझे आज ऐसे लगा कि उसने आज वह भाड़ू कमरे के बजाय मेरे दिमाग में लगा दिया। कमरे की तरह दिमाग में भी कूड़ा-कचरा होता है जिसको नोपा महाराज ने ढेरी कर दिया। अब इसको फेंकेगा कौन? मैं या महाराज। मैंने आवाज लगाई, “महाराज, महाराज।”

“महाराज तो पान लाने बाजार गया है,” चौकीदार अब्दुल्ला बोला।

“ठीक।” मेरे मुँह से निकल गया।

पता नहीं, क्या सोचकर मैं छत की तरफ देखने लग गया। शायद छत पर कुछ लिखा हुआ हो।

बिल्ली ने आत्महत्या कर ली

हमने एक बिल्ली पाली। देखा जाए तो संयोग ही ऐसा बैठा कि हमें बिल्ली पालनी पड़ी। संयोग ही सब करवा देता है जिसे बड़े-बड़े ज्योतिषी भी मानते हैं।

एक दिन एक बिल्ली की बच्ची हमारे घर आ गई। उसकी हासत एक ऐसे घनाय बच्चे की तरह थी जिसके मा-बाप मर गए हों, बिल्कुल एकाकी। उसकी म्याऊँ-म्याऊँ भी एक दबी हुई आवाज में। हमें दया आ गई। पर वह हमसे बड़ी ही शंकित थी। शामद उसके साथ पहले कोई 'चट्टी' या ठगी हो गई हो। वह ठण्डे दूध को भी ठहर-ठहरकर पीती थी। मेरी लड़की ने सुझाव दिया कि बिल्ली को 'प्रहोष्ट' कर लिया जाए और उसकी परवरिश ठीक ढंग में हो। जहां तक 'प्रहोष्ट' करने का सवाल था, हम घर में सभी एकमत थे, परन्तु बीबी को एक भावांका थी और वह अपने स्पष्ट शब्दों में सामने रख दी, बिना किसी लाग-सपेट के।

"बिल्ली पालने का मतलब यह होगा," उसने कहना शुरू किया, "कि गली के सारे कुत्तों की भाँखें हमारे घर पर लगी-रहेंगी। हर समय कुत्ते के बारे में ही सोचते रहना गरीब घरों का काम नहीं। दूसरी बात यह भी है कि कुत्ते घातें हैं देने पाव, बड़े चुपकेसे, खोर की तरह।"

अन्त में तय यह रहा कि कुत्तों के भय से बिल्ली को कुत्तों के सामने कैसे फँका जा सक्ता है। बिल्ली के लिए एक स्थान सुरक्षित कर दिया जाए और यह भी तय रहा कि जब तक बिल्ली पूरी बालिग न हो जाए, उसे दिन में बांधकर रखा जाए और रात्रि में उसे पूरी आजादी हो।

इस छोटी-सी बिल्ली ने हमें बड़ा प्रभावित किया। एक होनहार बिल्ली के सभी गुण उसमें नजर आए। बिल्ली इकरंगी नहीं थी। बिल्ली की तीन सम्भत्ताओं

का सम्मिश्रण । बड़ी ही सफाई-पसन्द । पास में रमे हुए 'कुण्डे' को ही 'टायलेट' की जगह काम में लेती ।

थोड़े ही समय में घर के सभी सदस्यों से घुलमिल गई । इतनी घुलमिल गई कि जैसे इस बिल्ली के साथ जन्म-जन्मान्तर से सम्पर्क बना था रहा हो । मेरी पत्नी से तो, गाम तीर पर उसकी बहुत ही पटती । वह भट से फूदकर उसकी गोदी में जा बैठती । घनका देने पर भी हटती नहीं । मुझे एक दिन की बात याद है । बिल्ली उसकी गोद में बैठी हुई थी और वह बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेर रही थी । वह भी जमकर बैठी हुई अपनी पूंछ हिला रही थी । मुझे एक मजाक मूझा ।

“बड़ी ही अजीब बात है कि दो बिल्लियां लड़ती नहीं । उल्टे एक-दूसरे से प्यार कर रही हैं ।” मैंने अपना हृथगोला फेंका ।

“दो कहाँ है, एक ही तो है ।” मेरा गोला फूटा नहीं । मेरी पत्नी बात समझी नहीं । विस्फोट होने से बच गया ।

“देखो, अंग्रेजी में 'कैट' का मतलब औरत भी होता है । औरत और बिल्ली समानधर्मा हैं, शास्त्रों में भी लिखा है ।” मैंने बात संक्षेप में ही कही । छोटा-सा तूफान उठा और बैठ गया ।

“शुरुआत में तो हमने बिल्ली को 'मिनकी' से सम्बोधन करना शुरू किया परन्तु ज्यों-ज्यों वह प्रिय से प्रियतर होने लगी, उसका नाम भी संशोधित होता गया मिनकी से मिनाकी बनी और मिनाकी से आगे चलकर बन गई मेनका । मेनका शब्द सुनते ही कान ऊंचे करके दौड़ी चली आती । मेनका को अपना नाम पसन्द जरूर आया होगा । तब ही तो जब किसीने पुकारा 'मेनका' और वह भट से म्याऊं-म्याऊं के साथ खुद ही हाज़िर हो जाती । बड़ी ही द्रुतगति से उसने पारिवारिक सदस्यता प्राप्त कर ली । एक दिन मेरी लड़की ने सुझाव रखा कि उसका नाम राशनकार्ड में जुड़वा लिया जाए । आपत्ति की बात तो खैर इसमें थी भी नहीं । उसका तर्क था, “जब लोग तो मरे हुए व्यक्तियों को भी राशन कार्ड में मरने नहीं देते, फिर मेनका का नाम क्यों न हो ?”

इस बात पर हम सभी हंसे । खूब हंसे ।

मैंने इस बात पर एक चुटकला सुनाया ।

“एक औरत ने अपने पति से 'नथ' बनवाने का अनुरोध किया तो पति बोला

कि मेरा इरादा तो तेरा नाक काटने का है।"

एक बार फिर हम सब सोच हुंमैं। मेनका न जाने क्या सोचकर फुटकर मेरी गोद में आ पमकी। धायद समझ गई हो कि राशन का यह स्वेत भी बना रहे तो गनीमा है।

"धायदा खुदबला तो मेनका को भी पसन्द आया।" मेरी लडकी की टिप्पणी।

मेनका के आने ने हमारे घर में खुशी की लहर द्रा गई। मगर सबसे बड़ा चपदा तो यह हुआ कि एक गलन रहस्य की बात समझ में आ गई। बुढ़ को ऐसी बात तो हाइ-मोम गनाकर समझ में आई थी।

मैंने पड़ा था, कई बार घोर कई जगह पड़ा था कि पण्डित नेहरू ने हिमालयी पण्डा पाल रखा था। कई दिनतक तो मैं यही गमझता रहा कि नेहरू एक पण्डित है और इसलिए एक पण्डे की तरह उनका सम्मान होना स्वाभाविक है। मन में एक बात घोर जमी हुई थी। कहने को कोई कुछ भी कहे। जात-जात न मानने की लम्बी-छोड़ी धोपनाओं के बावजूद भी एक पण्डित का एक पण्डे के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक है। हमने धन्यतर नहीं किया जा सकता। अगर कोई कहता है तो हिमाणी गौर पर वह ईमानदार नहीं है। पानी से धून पाड़ा होता ही आया है। स्वाभाविक आकर्षण के कारण ही पण्डितजी पण्डे को अपने हाथ से निलाने हैं और अपने इतने व्यस्त कार्यक्रम में से कुछ समय पण्डे के लिए निकालते हैं, यह मेरी धारणा थी। पर एक सवाल रह-रहकर उठाता। "क्या पण्डा पगु है जो पण्डितजी अपने हाथ से निलाने में पुण्य-नाम मानते हो।" मैंने कई बार सरपच्ची की पर फिर भी पूरी बात समझ में नहीं आई।

कुछ दिन बाद एक दिन भगमार में निज देखने को मिला। पण्डितजी पण्डे को मिला रहे हैं, पण्डा तो किसी पण्डित का रागोत्री न होकर जामबन्त का वसत्र निवन्ना। मुझे बड़ी हसी आई। देश के इतने बड़े भादमी के पास भादमियों से मिलने की तो फुरसत है नहीं। मगर जामबन्त के वसत्र का धातिध्य सरकार करने को समर्थ है, किमी गुरिल्ला या जिराफ के लिए समय का अभाव नहीं। बड़े भादमी की सतक! कोई कहे तो क्या बहे? बड़े भादमी सनक पालते हैं। मेरी समझ में बात आ गई।

बहुत कुछ सोचा तो एक बात और समझ में आ गई कि पण्डित नेहरू ही

एकमात्र सनकी नहीं थे। हर बड़ा आदमी सनकी होता है। धर्मराज युधिष्ठिर कुत्तों के शौकीन थे। अपने कुत्ते के लिए स्वयं तक छोड़ने को तैयार हो गए। एडवर्ड ग्रिफ़्थ ने तो अपनी मननाही घोड़ी के लिए राजगद्दी ही छोड़ी थी और लोगों ने दांतों तक अंगुली दबा ली। न्यूटन का कुत्ता कितना अलाम या परन्तु फिर भी प्रिय। इतिहास भरा पड़ा है। कोई तोते का शौकीन है, (हीरामन को कौन नहीं जानता ?) तो कोई उल्लू का शौकीन, तो कोई स्यामी बिल्ली का। और तो और, भोलें धम्भू अपने नान्दी को नहीं छोड़ सकते। देवताओं ने गजब ही कर दिया। किसीको ढंग का जानवर नहीं मिला तो भैंसा ही पकड़ लिया। गणेशजी की 'चोयस' चूहे पर पड़ी। ऐसे गणेश को पूछकर हर कार्य का श्रीगणेश करते हैं। कमाल है। क्या कोई कुएं में भांग पड़ी हुई है ? पर इसके पीछे कोई कारण भी रहा होगा, मेरी समझ में नहीं आया।

पर मेनका ने मुझे आत्मज्ञान दिया। जब वह मेरी गोद में बैठ जाती या रात को मुझसे चिपककर सो जाती तो मैं भाव विह्वल बना कभी उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगता तो कभी उसके सिर पर। उसके स्पर्श में बिजली का करण्ट। एक विशेष प्रकार का स्पन्दन। एक ऐसा अनुभव जो आदमी नाम के जानवर के सम्पर्क से कभी प्राप्त नहीं हुआ था। 'वाह री मेनका' कहकर मैं उसे प्यार से गले लगाता तो वह भी अपनी आँखें मेरी आँखों में गड़ा देती और मूक भाषा में बहुत कुछ कह जाती। शब्दों में ढाला जाए तो उसकी मोटी अभिव्यक्ति यही थी कि वह आत्मसात् होना चाहती थी। न कोई प्रतिदान, न कोई प्रतिफल। काश ! कीट्स को, जो 'सेन्सेशन' की तलाश में किसी बुलबुल के पीछे दौड़ता रहा, कोई मेनका मिली होती !

मेनका की मधुर म्याऊं-म्याऊं से चिरन्तन रहस्य की पहली पर्त खुली। मेनका व उसकी विरादरी प्यार को न तो एक्सप्लोइट करती है न ब्लैकमेल और न किसी प्रकार का कर्मिशियलाइजेशन। छोटा-मोटा हर आदमी प्यार करना चाहता है। अपने-आपको अपने ही ईगो से रिलीज करना चाहता है। बेलगाम होकर, सारी थोपी हुई तथा विरासत में मिली हुई मजबूरियों और मान्यताओं को दूर रखकर संलाप करना चाहता है। पहुंचे हुए सन्त और योगियों के बारे तो कहा जाता है कि वे अपने-आपको 'डिसेम्बल' करते हैं। घड़ कहीं तो सिर , हाथ कहीं तो पांव कहीं। पर ऐसे समय में किसी भी व्यक्ति को साक्षी होने

का व्यवहार नहीं होते। हर आदमी धनेश में लवासन करना चाहता है। एक नई ऊर्जा की तलाश में। हर बोझ होने वाला जानवर, चाहे ऊंट हो या गधरा, दिन-भर बोझ होने के बाद रात में 'लिटना' चाहता है ताकि वह थरोताजा हो जाए। कोई भी बर्तौपारी बोझीम धष्टे बर्तौ धारण किए हुए नहीं रह सकता, बर्तौ वह धष्ट हो जाएगा।

हर बड़ा धादमी भी कुछ धात ऐसे चाहता है जो सही माने में उसके हों। वह चाहे तो बिनोम बरे, बिनवारियां मारे, बेनना की सारी बर्दिया, बेल्ट बर्नरह हटाकर, एच गदहे की तरह रात में सोट मके। कुछ बर्तौ कर सके ऐसी भाषा में, बिनारी धामर उगरी मुद की बनाई हुई हो। उम्मादीं और धावेगीं की धोवनकर रस गये, छीटी बडाकर। ऐसे धावों को वह बर्तौ धादमी के बर्तौ के माय 'धेधर' करने की तैयार नहीं। इसके लिए कोई उपयुक्त धात हो सकता है तो वह होगा कोई पशु, स्वामी बिल्ली, धुम, कुत्ता। ये निष्पाप जीव न तो बर्तौ को 'एवत-प्लोपट' करते हैं और न 'म्मेकमेनिग' जबकि धादमी का धात तो इसके धातवा और कोई धोड जानना ही नहीं। धेनका के धातधिक धात से ही मुझे यह सब कुछ जान हुआ। मैं धुड से धुडकर धात हो गया।

दिन में रस्ती में बर्तौ हुई धेनका रात में धातवा हो जाती। बिल्ली बर्तौ की सारी धातवाएँ व धातुधिया उसके धुन में थीं। धुनों पर धातने की धातवात कला व धातुधुलता के धातित होने में कोई धेन नहीं लगी। वह अपने 'धेधर' धातम में धुहे धातने की धातुधुलता व धातुधुलता करती रहती थी। धुई की धेन हो या कोई धेन की धेन हो, उसे धुहा धातकर बर्तौ धुस्ती के उसपर धातती। एक दिन धेन उसे धुहे का धातार करते देगा। एक बड़ा धारी धुहा, जिसने कई छोटे-मोटे धुहे धाए होंगे। धात सारे धातुधियों का धातक। धेन का धातपारी। धातसे मुझे यह धात तो धात गई कि धेनका धात धाततया धातवधुलता है। उसे किमीकी धात की धातार नहीं। धातका धातना धातधर है। धेनका धात धातने धेन पर जी लवती है।

एक दिन धात धात कि धेनका की रस्ती छोटी धातनी है, उसकी एक धातवी धोरदी जाए। धात रस्ती ला दी। धात उसके धातने की धातधि धातनी हो गई। धातवी धोर देने के धातधुल मधमद तो धातनी हो या कि उसका धात धातुधुल हो। धातकी धातवी धातित न रहे और धातवधुलता का धात भी कुछ धात हो जाए।

फिर वही गंयोग की बात । एक दिन मेनका खूँटी से लटक गई । मेरी लड़की ने देखा तो वह हक्का-बक्का रह गई और चिल्ला उठी, "मेनका ने आत्महत्या कर ली ।"

हम सब भागकर मेनका के कमरे में गए तो देखा कि रस्सी खूँटी में अटकी हुई है और मेनका लटकी हुई । मेनका की पिछली टांगें मुँह की तरफ खिंची हुई तथा गर्दन झुकी हुई ।

मेनका नीचे उतारी गई । पानी छिड़का गया । मेरी लड़की भागकर हमारे पड़ोसी डाक्टर को बुला लाई । डाक्टर आया ।

डाक्टर को मैंने सारी बात बताई और स्थिति समझाई । मुझे ध्रुव भी भरोसा नहीं हो रहा था कि मेनका मर गई है ।

"देखिए तो सही, डाक्टर साहब । क्या हमारी बिल्ली सचमुच मर गई ? क्या किसी प्रकार की 'मसाज' करने से यह जी सकती है कि नहीं ?" मैं अपनी व्यग्रता को छुपाने लगा ।

"बिल्ली तो मर चुकी," डाक्टर ने औपचारिक तौर पर बिल्ली को मृत घोषित कर दिया ।

मेनका ने आत्महत्या किन कारणों से या किस हालत में की होगी, क्या आप इसपर रोशनी डाल सकेंगे ? मुझे ऐसा कोई कारण नजर नहीं आया जिससे उसे आत्महत्या करने की नीवत आ पड़ी हो । हमारा न इससे किसी प्रकार का झगड़ा था और न किसी प्रकार का मनमुटाव । मैंने अपने मन की बात कह दी ।

"बुरा न मानिएगा, आपकी मेनका मूर्ख थी मूलतः । मगर आपने दो-चार हरकतों के आधार पर उसे अकलमन्द समझ लिया और उसे सर्टिफिकेट दे दिया अकलमर्दी का । सही माने में मेनका के मरने का कारण आप हैं ।" डाक्टर ने बम फोड़ दिया ।

"यह आप क्या कह रहे हैं डाक्टर साहब ? मैं हूँ मेनका की मौत का कारण ?"

मैं डाक्टर साहब के मुँह की तरफ देखने लगा ।

"देखिए, यह तो जग-जाहिर है कि आप मेनका को चाहते थे, मेनका पर फिदा थे । नतीजा इसका यह हुआ कि मेनका को आप एक मेग्नीफाइंग ग्लास से देखने लगे । पर वह सही शकल तो थी नहीं । डाक्टर ने बात पूरी भी न की कि मेरे मुँह से निकल गया, 'एँ ।' "

“ऐ” की बात नहीं। आपने उसे लम्बी डोर दी कि नहीं?” डाक्टर बोला।

“हां।”

“आपको संशा तो यही थी कि आपकी मेनका तबियत से घुमे, उसको कोई तकलीफ न हो?”

“हां।”

“पर आपने यह कभी नहीं सोचा कि मेनका इसके काबिल न थी। मूर्ख को लम्बी डोर देने का मतलब यह होता है कि आप उसे फासी खाने की प्रेरणा दे रहे हैं?”

“पर मेनका मूर्ख नहीं थी। यह मेरी सकारण धारणा है।”

“तो फिर सी चूहे खा लिए होगे?” डाक्टर ने बात को ट्विस्ट किया।

“मान लू कि सी चूहे खा भी लिए हो, पर उसने क्या?” मैंने तर्क की बांह पकड़ी।

“सी चूहे खाने के बाद बिल्ली या तो हज्र को जाए या हारीकीरी करे। आपकी बिल्ली ने हारीकीरी कर ली, यों मान लो।” डाक्टर ने बात गले उतारने की कोशिश की।

“मेरा तो भव भी समाल है, मेनका ने आत्महत्या की है।”

“अच्छा हुआ कि आपकी मेनका मर गई, वरना आपको मरना पड़ता या मेनका की जगह किसी और को मारना पड़ता,” डाक्टर ने धमाका किया।

“मैं यह क्या भुन रह्य हूँ, डाक्टर साहब। मेरे कानों में कोई गड़बड़ तो नहीं हो गई है?” मैंने कानों को दोनों हाथों से दबा लिया।

“कानों को दबाओ मत, कानों को खोलकर सुनो।” डाक्टर गरज्य। “प्यार की सीमा होती है,” पर जब उसकी सीमा और सीलिंग का अधिकमण होता है तो प्यार भी ‘रेड’ में आ जाता है। ‘रेड’ का माने आप समझते हैं—‘घतरे का रंग’।

“डाक्टर साहब, आप तो पहेलिया बुझ रहे हैं?” मैं गिड़गिड़ाया।

“आप तो बड़ी ही ऊकचूक बात कर रहे हैं। शोधे-बी के मुह से जब दोस्न-पीयर ने कहा कि मैंने उसे (डॉसिडेमोना) प्यार तो सूब किया, पर बुद्धिमानी से नहीं, तो इसका सीधे-सादे शब्दों में मतलब क्या था? समझने की शीघ्रता करो।”

“क्या था?” मेरे मुह से निकल गया। मैं हक्का-बक्का।

"इसका मतलब यह था कि चौबीस कैरट का या सौ टंचों का सोना बेकार है यदि उसमें कुछ तांबे या चांदी की कुछ मिक्चर में साद नहीं मिली हुई है। साइकिल में ब्रेक होना ही चाहिए। सब्जी में कुछ खारापन (नमक) होना ही चाहिए। प्यार में बुद्धि का कुछ पुट तो होना ही चाहिए वरना..."

"वरना?" मेरे मुंह से निकल गया। मैं अवाक।

वरना प्यार पागलपन बन जाएगा। बिना बुद्धि का प्यार बिना नमक की सब्जी है। बुद्धि प्यार का विटामिन है, आंखें हैं, टांगें हैं। बिना बुद्धि प्यार अन्धा है। अन्धा कुएं में गिरता है, कुतुबमीनार की ऊंचाई पा भी ली तो गिर पड़ता है। एक घम से। चौबीस कैरट के सोने के आभूषण वैसे ही होते हैं जैसे बिना रीढ़ की हड्डी के शरीर। चाहे जिधर मुड़ जाते हैं, चाहे जैसी शकल अस्तिवार कर लेते हैं। हर चीज होलडॉल हो जाती है और इसलिए ही तो उसमें तांबा मिलाया जाता है ताकि उसमें कड़क रहे। उसकी शकल बिगड़े नहीं। प्रेम व्यंजन है तो बुद्धि लवण। लवण लावण्य देता है।

डाक्टर शायद भाषण झाड़ता ही जाता पर मैंने बीच में अपनी तरुण मार दी।

"प्यार के साथ बुद्धि का मेल नहीं, आप कुछ भी कहें।"

"तब तो, फिर कुतुबमीनार पर आखिरी मंजिल पर चढ़ने की मुमानियत बनी रहेगी। मेनका मरती ही रहेगी"—डाक्टर ने दार्शनिक भाव से बात पूरी की।

डाक्टर ने छुट्टी ली, उसे जाना था किसी जरूरी काम से।

उस दिन के बाद जब कभी भी अखबार में किसीकी आत्महत्या की बात पढ़ता हूं या कोई चर्चा सुनता हूं तो मेनका मेरे दिमाग में फिर से जी उठती है और डाक्टर की बात ताजा हो जाती है। मैं मेनका का पोस्टमार्टम शुरू कर देता हूं। इस दिमागी पोस्टमार्टम के दौरान सूक्ष्म आंखों से देखता हूं कि किसी भी आत्महत्या की स्थिति अपरिहार्य नहीं होती, बचाई जा सकती है। हर आत्महत्या के पीछे जिम्मेवार होते हैं कुछ अदृश्य हाथ और एक अदृश्य रस्सी। मैं मानस चक्षुओं से यह सब कुछ देखता हूं। साइकिल के ठीक समय पर ब्रेक लग जाए तो संभावित एक्सीडेंट टाला जा सकता है।

मैं आज भी उस स्थल पर जाने से वचता हूं जहां मेनका रहती थी। उस

खूटी पर कोई चीज नहीं टागता जहाँ मेनका टग गई थी। खूटी में एक कोस टगा हुआ है जिसे मेरे सिवाय कोई नहीं देख सकता।

मेनका की रूह आज भी ठम कमरे में घूमती रहती है। मुझे कमरे में आज भी उसकी म्यां-म्या सुनाई पड़ती है जबकि मेरे घर में कोई इस बात को मानने को तैयार नहीं। उन सबके अनुसार यह मेरा भ्रम है। मेरी हालत हेमलेट की है।

डेनमार्क के राजकुमार हेमलेट की पीड़ा में अनुभव करते लगता हूँ। हेमलेट अपने बाप का भूत देखना चाहता था। मैं हेमलेट बन जाता हूँ और चाहता हूँ कि मेनका का भूत उतरकर आए और बतलाए कि उसने खुदकुशी की या उसे मेरी बेवकूफी से मरना पड़ा। हेमलेट की तरह 'टु बी' और 'नोट टु बी' के चक्कर में फसता ही जाता हूँ। एक आवाज भन्दर से घाती है।

यह भी हो सकता है कि मेनका ने जानबूझकर कुरबानी दी हो, मेरे लिए, मेरे ही हित में।

जीवनकाल में मुझे एक रहस्य समझा गई कि पंडित नेहरू के पण्डा पालने के पीछे भूल बात क्या थी।

परफर एक दूसरी बात समझा गई कि प्यार की परिधि व कुछ सीमाएं होती हैं। सीमाओं का अतिक्रमण नहीं होता चाहिए। डाक्टर में मेनका का ही भूत बोल रहा था बर्ना 'डाक्टर डाक्टर' इतनी सारी बात कैसे कह सकता था।

मुझे कुछ पदचाप सुनाई दिए। लगा कि डाक्टर था रहा है।

मैंने अलवार उठाया तो मेरी नज़र 'एक वाक्स ग्यूस' पर टिक गई...

"कुतुब मीनार से गिरकर एक युवती ने आत्महत्या कर ली," मैंने अलवार फेंक दिया। इस महीने की यह तीसरी आत्महत्या थी। पढ़ने की कोशिश ही नहीं की।

एक सिगरेट निकाली। धुमा निकालने लगा। घुएँ के बिज्र बनने लगे और एक घूमिल बिज्र टैडी-मेडी रैलाएँ। एक सच्य पढ़ सकता हूँ घुपता-छा—
छा...हा...द...ल। धुमा उड़ाने के लिए फूक मारता हूँ। बाहादुर गायब।

सब एक हो जाओ

“हलो, छोटू, क्या हाल-चाल है ? चंगा ?” मैंने दूकान में घुसते ही छोटू से सवाल किया ।

छोटू मेरा पुराना बारबर । उस समय से जब मेरे बाल एकदम जेट ब्लैक थे । उस समय से आज तक मेरे आसपास बहुत सारी तब्दीलियां आ गई हैं और आती ही जा रही हैं । उस समय का प्राइस इण्डेक्स और आज के प्राइस इण्डेक्स का मुकाबला ही नहीं । सरकार ने तंग आकर ‘वेस यीधर’ ही बदल दिया । परन्तु छोटू आज भी मेरा बारबर । मेरे और छोटू के सम्बन्धों में कोई तब्दीली नहीं ।

“कर क्या रहे हैं ?” छोटू कहने लगा, “वही पुराना धन्वा । लोगों की ठुड्डी सहलाते हैं और दुनिया की ठुड्डी सहलाते-सहलाते अपनी ठुड्डी सफेद हो गई ।”

“बाह रे छोटू । अघूरी बात क्यों करता है ? लोगों के सिर पर हाथ भी तो फेरते रहते हो ?”

“उससे क्या हुआ, मेरी सरकार ? कई सिरफिरे आते हैं । उनका सिर सहलाते जाओ, उनके मन बहलाओ और अन्त में वे कहते हैं कि पैसे अगली बार । जब मैं भुंभुलाहट में आकर ज्यादा जोर देकर कहता हूँ तो कहने लगते हैं कि तुमने कौनसी बाजरी तोली है ? बाल ही तो काटे हैं ?”

“एक दिन एक बाबू साहब बोले कि गांधीजी ने कहा है कि नाई और वकील का पेशा एक जैसा हो हेय है क्योंकि दोनों ही समाज को कुछ देते नहीं, दोनों ही समाज को कतरते हैं । अगर ये दोनों हट जाएं समाज से तो इसमें समाज का भला है । शायद वह गांधीजी के बाद न जाने किसको घसीटकर लाता, मुझसे रहा न गया और मैंने कहा—गांधीजी ने तो बहुत सारी बातें कही हैं, पर उनकी बातें तुम्हारे भेजे में घुस नहीं सकती हैं । तुम्हारी खोपड़ी तो मेरी देखी हुई है । गांधी

जी की बात समझ में नहीं आई उन लोगों की समझ में भी, जो उनके नाम की कमाई खा रहे हैं।”

वह मेरी बात सुनकर दंग रह गया। वह बोला -

“मैं तुम्हें किताब में दिखा सकता हूँ, मिस्टर। तुम बाल काटने का काम किए जाओ, यह भ्रम की बात समझ में नहीं आ सकती।”

“तुम्हारा जैसा ही होना तुम्हारी किताब वाला। गांधी की समझना प्राप्त नहीं। गांधी की समझते नहीं वे लोग भी जो गांधीजी की वेषते हैं, गांधीवाद के धोक व्यापारी बनते हैं और धोक भाव से गांधी जी की वेषते हैं।”

“मेरे से ‘बेट’ कर लो,” वह बोला।

“काहे की। गांधीजी ने तो यह कहा कि नाई को चाहिए कि भेड़ बकरियों की ऊन कतरने के बजाय तुम जैसे भ्रादमियों के बाल काटे। गांधीजी ने सामान्य सोचा होगा कि भेड़-बकरी की ऊन काटना क्यादा अच्छा है क्योंकि इन जानवरों की ऊन एक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करती है जबकि भ्रादमियों के बालों से कोई मतलब सिद्ध नहीं होता। तुम्हारे पास एक बोझ है, वैसे ही तुम्हारे बहम। खोपड़ी हल्की रखो।”

“छोटू, नाई की कैंची चलती रहनी चाहिए, पर जब उसकी जीभ चलने लगती है तो समझ लेना चाहिए कि उसकी दुकान में कुछ नहीं है।” मैंने कहा।

“पर आपको यह किसने कहा कि नाई की दुकान में वेषते लापक कोई चीज होती है इसलिए ही तो नाई की दुकान को ‘सँखून’ कहते हैं।”

“हम लोग तो लोगों के बाल उतारते हैं, सर के भी और दाढ़ी-मूँछ के भी। भजे की बात यह है कि उनके ही बाल उनके ही पैरों में। बालों में अगर इरडत है तो इरडत पैरों में।” छोटू का जवाब था।

“छोटू, तू तो नेता होने लायक है। जीभ तेरी कैंची की तरह चलती है। अच्छा तो यह रहेगा कि तू चुनाव लड़—एक नारे के साथ ‘दुनिया-भर के नाइपो एक हो’।”

मेरी बात पर छोटू की हसी आ गई।

“मरे, हँसते क्या हो। मान लो कि दुनिया-भर के बारबार लोग एक हो जाएं तो वे अन्य लोगों पर प्रसार ला सकते हैं। जो तुम्हारे साथ नहीं, तुम उसकी हजामत बनाना बंद कर दो। सारे ब्यूटी सँखून तुम्हारे बग के हाथ में हैं। बेश

प्रसाधन की सारी कलाएं तुम्हारे हाथ में हैं। आज के एक्टर और एक्ट्रेस तुम्हारे हाथ के बनाये हुए हैं। वे मारी मोह गलत किसकी देन हैं? बार्ता का संवाचना, जुल्फों में मैनेट भरना किसको आता है? तुम्हें स्वयं अपने स्वरूप और व्यक्ति का हनुमानजी महाराज की तरह ज्ञान नहीं। देग, तुम्हारे यहाँ ये दो चित्र दो स्थितियाँ प्रगट करते हैं।

“एक हजामत के पहने की।

और दूसरी हजामत के बाद की।

“एक ही आदमी के दो रूप। एक ही चीज के दो पहलू। मगर स्थितियों में अन्तर। हजामत के पहले वाले चित्र में आदमी वनमानुष लगता है। एक मवाली लगता है।

“‘हजामत के बाद’ वाले चित्र में रोमांटिक लगता है। एक पर्सनैलिटी निखर आती है। पर्सनैलिटी में ही प्लस पोयण्ड होते हैं।

“पर आज पर्सनैलिटी दरभसल एक बारबर को ही देन है। परमात्मा ने आदमी के बनाने में जो खामियाँ रख दी थीं, उनको सुधारने वाले दो ही व्यक्ति होते हैं, एक नाई और एक दर्जी।

आज का व्यक्ति बारबरमेड है, टेलरमेड है। क्यों? क्या गलत कहता हूँ?”
मैंने छोटू के यहाँ एक कार्नर मीटिंग कर ली।

“वाह गुरु! खूब लाए नये चांद की।” छोटू ने चुटकी लेनी चाही। “लो तुम तो मज़ाक समझ रहे हो?” छोटू की प्रतिक्रिया जानने के लिए मैं रुका नहीं और कहता ही चला गया, “वावा, शेखसादी और मिर्जा गालिव से बड़ा तो आलिम फाज़िल कोई हुआ ही नहीं। इन दोनों के साथ वह चोट हुई कि तेरे-मेरे जैसे आदमी तो ऐसी हालत में आत्महत्या कर लें। इन दोनों महानुभावों को बादशाह ने दावत पर बुलाया। उन्होंने अपने इल्म के नशे में किसी चीज का ख्याल नहीं रक्खा। न दाढ़ी बनवाई, न कपड़े ही बनवाये और चल दिये मवाली की तरह। सन्तरी ने रोक लिया। अब तुम ही बताओ, कहीं माथे पर लिखा था कि आप हैं हिन्दुस्तान के आला खायर मिर्जा गालिव। नतीजा यह हुआ कि आप वेआबरू होकर आ गए। इसी प्रकार की फज़ीहत हुई ईश्वरचन्द विद्यासागर की। एक जगह कुलियों में पकड़े गये।

“यह तो बारबर के हाथ का ही कला-कौशल समझना चाहिए कि आला

इडियट लोग घसोका होटल में घसे जाते हैं। बेरे लोग बारबरमेड दाखियत के पीछे-पीछे चलते हैं। बारबर के हाथ में होता है पास भी पासपोर्ट भी, जिसकी बजह से बड़ी-बड़ी हिनर पार्टियों में ऐसे लोग पहुंच जाते हैं। इनके वालों के नीचे कुछ नहीं होता। सो प्यारे, मेरा बहना मान, नगा दे नारा—दुनिया-भर के नाइयो, एक हो जाधो।

मैंने छोटू के मुह की तरफ देखा, एक सास भाव-मंगिमा के साथ, जिसका मतलब था कि तुम क्या कहते हो।

“गुरु, तुम्हारी बात तो जची ओर मेरे दिमाग में एक ओर जब गई।”

“यह क्या ?” मैं पूछ बैठा।

“कि तुम्हारे पास पैगाम है दुनियाको देने के लिए। तुम्हारी वाणी में मोहिनी है जिससे तुम आदमी तो क्या, भट्टे को भी पिचला सकते हो।” छोटू ने बात पूरी कर दी।

“बाहू छोटू ! हमारी बिल्ली हमसे ही म्याऊं।” मैंने सिर हिलाते हुए बात बही।

“नहीं गुरु ! सब कह रहा हूँ, खुदा की बसम।”

“ऊं !” मैंने भागे कुछ नहीं कहा।

“गुरु, तुम्हारे में तो पैगम्बर होने के लक्षण हैं। पैगम्बर लोग और क्या करते होगे, बात यही तो तुम्हारी तरह चुटकलेवाड़ी, कहानी-किस्से बगैरह के जरिये लोगों को साथ कर लेते होंगे।” छोटू जरा गंभीर हो गया।

‘बात तो ठीक ही कहता है, बड़े-बड़े पैगम्बरों की बातें पढ़ता हूँ तो मैं भी यही सोचता हूँ कि इन पैगम्बरों ने अपने पास के लोगों के चुटकल, कहानी-किस्से सुनाये। कोई भी कहानी-किस्से सुनानेवाला पैगम्बर बन सकता है। क्यों ? मुझे लगता कि छोटू (मजाक में ही यही) बात तो गदरी कह रहा है।’ मैं भी कुछ सीरिअस हो जाता हूँ।

“बस एक दिक्कत उठर आती है, पैगम्बर बनने में ?” छोटू इस बार काफी गंभीर नज़र धाता है।

“यह क्या ?” मैं उत्सुक हो गया।

“हर पैगम्बर मरता है बेमौत। यीसू के कीलें ठीकी गईं। महात्मा गांधी को गोली मार दी गई। मीरा को जहर पिलाया गया”...छोटू ने बात पूरी

भी नहीं की थी कि मैंने कुछ नाम ग्रीर जोड़ दिये।

“गुकरात की भी यही हालत हुई। मोहम्मद साहब को हिच करना पड़ा।”

“मरने के बाद तो उनकी पूजा जरूर होती है।” छोटू बोला।

“मरने के बाद कितने देना है। मरने की शर्त मंजूर नहीं, बाबा। हम तो जीवित रहने के लिए भूठी गंगाजली उठा सकते हैं, छोटे-से प्रमोशन के लिए बफसर की चमनागिरी कर सकते हैं, कूड़ा हल्फ उठा सकते हैं, बस मरने की बात मंजूर नहीं ! दूर रखो पैगम्बरी।” मैंने अपना मेन्गुफेस्टो पेश कर दिया।

“तो फिर गुरु...” छोटू कुछ कहना चाहता था कि मैं बीच में बोल पड़ा।

अपने राम पैगम्बरी को घन्चे के तौर पर तो अपना सकते हैं। घन्चा कोई बुरा नहीं होता परन्तु मरने को तैयार नहीं। न किसी बात के लिए, न किसी सिद्धान्त के लिए। मुझे तो चाणक्य की बात जंचती है ‘आत्मनं सततं रक्षेत् दारैरपि।’

“मतलब क्या हुआ गुरु ?” छोटू ने पूछा।

“मतलब यह हुआ कि भरोसा किसीपर मत करो। अपनी रक्षा करो अपनी ग्रीरत से भी। खैर, इन सबसे भी जरूरी है कि तू मेरी दाढ़ी बना।” मैंने सारी प्राथमिकताएं बदल दीं।

“फिर गुरु, संसार भरके नाइयो...”

छोटू की बात मैंने पूरी ही नहीं होने दी। मैं बोल पड़ा, “मार गोली इन सब-को। उल्टा-सीधा उस्तरा चला, प्यारे।”

“इतनी जल्दी, गुरु ?” छोटू कुछ कहना चाहता होगा कि मैंने फिर उसे रोक दिया।

“मुझे साहब ने बुलाया है।” उनके बंगले जाना है।

ज्यों ही दाढ़ी पूरी हुई, मैं उठा, जेब में हाथ डाला, जेब में कुछ नहीं निकला, तो ‘सोरी छोटू’ कहकर दूकान से निकल पड़ा।

साइकिल ली, चल पड़ा। छोटू की क्या प्रतिक्रिया हुई होगी, जानने की न तो कोशिश की ग्रीर न मेरे पास इतना वक्त ही था।

जब ब्रह्मा बागी हो गये

जब धरती बन गई तो त्रिमूर्ति ने तै किया कि धरती के उन्नयन का प्रारूप बने। कुछ देवताओं को स्वर्ग में पृथ्वी पर निषिद्ध किया जाए या वहीं पर नई सृष्टि की रचना की जाए, यह सारा कार्य प्रजापति के जिम्मे छोड़ा जाए। बैसे भी सृष्टि-रचना का पोटफोलियो सदा से प्रजापति के पास ही चला आया है। प्रजापति ने देवताओं के मुख्य अभियन्ता विद्वक्कर्मा को अपने साथ लिया। प्रजापति ने धरती की मिट्टी अपने हाथ में ली।

“मिट्टी तो अच्छी मालूम होती है, विश्वकर्मा, देखो तो मही।” प्रजापति बोले।

“मैं क्या देखू जब आप देख रहे हैं, पितामह,” विद्वक्कर्मा हाथ जोड़कर राधा हो गया।

प्रजापति ने मिट्टी के सोंदे को अपने हाथ में दबाया और ऊपर-नीचे किया और एक तिलीना बना दिया।

‘यह मिट्टी तो ठीक है, इसमें मंत्र है, जेब भी है। तिलीने बनाने लायक है।’ प्रजापति ने मन ही मन कुछ कहा।

विद्वक्कर्मा देखता रहा।

प्रजापति का मूढ़ भा गया। मिट्टी से तरह-तरह के तिलीने बनाने लग गए।

तिलीने देाकर प्रजापति बड़े खुश हुए। उन्हें दिली गुड़ी हुई।

“क्यों। ये तिलीने कैसे सगे, विद्वक्कर्मा?” प्रजापति बोले।

“इसमें पूछने की क्या बात है महाशय। आप ही तिलीने बना रहे हैं तो फिर कमी क्या हो सकती है, आपसे बड़ा ‘गारिटेज’ कौन हो सकता है भला।”

प्रजापति अपने मूढ़ में तिलीने बनाने गए। धरती की मिट्टी को दिमिम्न

पाकले देते गए। किसीके दो टांगें, किसीके चार टांगें, किसीके पूंछ लगा दी तो किसीके सींग। किसीके बड़े-बड़े कान तो उसके साथ छोटी-छोटी आंखें। कोई बिना बांग का। विशालता को हंसी भी आगे और आश्चर्य भी, पर विघाता को तुलिका गीन पकड़े।

प्रजापति दिन-भर गिल्लीने बनाते रहे।

बूढ़े प्रजापति को कुछ धकान महसूस होने लगी।

“अब बोलो विश्वकर्मा, गिल्लीने तो बहुत हो गए। अब और नहीं बनायेंगे। यह घरती इन गिल्लीनों से ग्रूव सजेगी। कितने प्यारे-प्यारे। घरती की मिट्टी, घरती के गिल्लीने टूटेंगे तो घरती का माल घरती पर। अपने तो निमित्त माय हैं।” बूढ़े प्रजापति अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगे।

“महाराज, एक काम और करो। आखिर आपने इतनी मेहनत की है,” विश्वकर्मा बोला।

“वह क्या रह गया?” ब्रह्मा बोले।

“इतकी चाबी तो भरो ताकि ये नाचें, गायें और बोलें भी। प्रजापति के बनाए हुए खिलौने तो तब ही जचेंगे। दीड़ते हुए, कूदते हुए।” विश्वकर्मा ने सुझाव दिया। ब्रह्मा हंसे। चारों मुंहों से। हंसी चारों दिशाओं में फैल गई।

“तुम्हारा प्रस्ताव तो ठीक है। इस वीरान घरती पर बहार आ जाएगी, पर खिलौने कहीं घरती पर खलवली न मचा दें। विष्णु कहीं उलहना न दें कि बुढ़े ब्रह्मा ने घरती पर पंगा खड़ा कर दिया,” प्रजापति विचारों में डूब गये।

“विष्णु महाराज तो बड़े ही खुश होंगे। उन्हें तो खुद ही खिलौनों का बड़ा शौक है।” विश्वकर्मा ने कमेंट किया।

“अरे, तुम क्या समझो विश्वकर्मा, केवल हथौड़ी ठोकते रहे हो। उसे तो एक ही खिलौना पसंद आ गया था, लक्ष्मी। शायद सोचा होगा कि गुड़िया है, खूब खेलेंगे। परन्तु उसे क्या पता था कि गुड़िया गजब ढा देगी और विष्णु खुद खिलौना बन जाएगा और उसके इशारे पर नाचेगा। अब तो जो खुद खिलौना बना हुआ है वह क्या खिलौनों से खेलेगा!”

“तीन बड़ों की बात है, मैं क्या जानूं। परन्तु इन खिलौनों में चाबी भर दो। मेरी तो यही हाथ जोड़कर प्रार्थना है।” विश्वकर्मा बोले।

“तथास्तु। सब में चाबी भर जाये,” प्रजापति ने स्फूर्ति की। बस, फिर क्या

या ? ब्रह्मा की इच्छा पूरी हुई ।

“अब देखो इन तिसीनों को, सब के सब गतिशील व गतिमान । कौंसा लगता है यह सारा नजारा, जरा अपने कमेट्स दो । तुम्हें अपने कमेट्स खुलकर देने हैं । तुम महान कारीगर हो, सारे देवताओं को तुम्हारे पर नाज है । हाँ तो बोनो, कोई एडीसन, फाल्टरेसन की बात है तो अभी किये देता हूँ, तुम जानते हो मुझे नौद या रहो है और तुम जानते हो मेरी रात का मतलब होता है चार युग—सतयुग से कल्मियुग तक एक ही स्ट्रैंज मे ।” ब्रह्मा ने विश्वकर्मा के मुलातिव होकर बात कही ।

“बड़ों की बात बड़ी होती है,” विश्वकर्मा ने बात पर सम्पुट बैठाने की कोशिश की ।

“विष्णु ने सारे देवताओं की चापलूस बना दिया, अब उन्हें स्तुति और स्तोत्र बहने के सिवा कुछ नहीं आता, परन्तु तुम तो कर्मी हो, विश्वकर्मा । देवताओं के कारीगर । तुम भी चापलूस । तुम्हें चापलूसी फबती नहीं,” ब्रह्मा ने विश्वकर्मा की घोर देखा, गुस्से से ब्रह्मा की दाढ़ी हिल रही थी । विश्वकर्मा कुछ सहमे और जल्दी ही अपने को गभाल सिवा और फिर बात का छोडा हुआ घागा पकड़ लिया ।

“ हाँ तो महाराज, अब तिसीनों के बारे में पूछ रहे थे । इस बारे में, पिता-मह, मेरे मुक्ताव व कुछ संकाए हैं ।

“ आपने ये तिसीने बनाये । पाँच टाग वाला यह तिसीना... ”

ब्रह्मा को हसी या गई और बीच में ही बोल उठे, ‘पाँच टाग वाला तिसीना नहीं, यह तो गूड है । यह हाथी है । टागें तो चार ही । सूड तो मेरा ‘आफ्दर फोट’ है । मैंने इसे भीमकाय बनाया । बड़ा ही शक्तिशाली । शक्ति का मापदण्ड । कोई बल मापेगा तो बहेगा, सी हाथियो का बल, हजार हाथियो का बल । पर मैंने इसकी गर्दन बनाई छोटी-सी । मुझे ख्याल आया कि यह तो बेचारा बैठ ही नहीं सकेगा । अगर कहीं गिर गया तो फिर पड़ा नहीं हो सकेगा । लीवर ब्रह्मा ने आया । मुझे बड़ी हंसी आई अपनी बुद्धि पर तथा थोड़ी शर्मिन्दगी भी महसूस हुई, यह सोचकर कि देवता सोम हूँगे, विष्णु की आदत तुम जानते हो । उसको तो कोई बहाना चाहिए । वह तो भट से कह उठेगा कि ‘बुद्धे की मत मारी गई ।’ देखो यह तिसीना, इसमें ‘सेंस ऑफ प्रोपोर्शन’ ही नहीं । सारे चापलूस

देवताओं की जमात भी गिनगिनाकर हंसने लगेगी। इन देवताओं की बातों से मनलन नहीं। विष्णु हंसा, गह हंसे। इन देवताओं का देवत्व में न्यून जानता हूँ। नारे के सारे पिट्टू और पिट्टलग्न। नच माने में यह लोग विष्णु के 'घसमन' हैं। नारे के सारे चुनलगीर। इनका न स्वतंत्र अस्तित्व है और न सत्ता में साम्प्रदायी। विष्णु निरंकुश है। ये देवगि के बच्चे बनते हैं, परन्तु इनको जरा-सा कुरेदो तो नाफ नजर आने लगेगा कि ये सारे ये नारे चुगल, स्वार्थी और धोये। यह स्वयं नरक से भी बदतर बना दिया है।" कहते-कहते ब्रह्मा के चारों मुग के नयुने फून गए।

विश्वकर्मा को पहली बार महमूस हुआ कि इन तथाकथित तीन बड़ों में भी मनमुटाव है और ये भी एक-दूसरे से रस्क करते हैं। केवल बाहर से एक दिखाई देने वाली त्रिमूर्ति अन्दर से गीनली है। एकता का तो केवल 'फसाड' है, दिखावा है। हकीकत तो यह है कि सत्ता को साम्प्रदायी में कोई नहीं भोगना चाहता, देव ही या अदेव। परन्तु बड़ों की लड़ाई में नहीं फंसना है, इसमें सतरा है। इस ब्याल मात्र से विश्वकर्मा को पसीना आ गया। बात का रूप बदलने के तिहाज से विश्वकर्मा बोले—

"तो पितामह, आपने सूंड लगाकर हाथी को 'लीवर' दे दिया। वह अब बैठ सकता है और खड़ा हो सकता है। आपने सूंड चेपकर विधाता के पद की गरिमा ही बढ़ाई है। अब कोई नहीं जान सकेगा कि विधाता ने कभी कोई चूक की थी।" विश्वकर्मा ने बात को नया मोड़ दिया।

"जब मैंने ऊंट बनाया तो इस बात को मद्दे-नजर रखा," ब्रह्मा के प्रोठों पर मुस्कराहट दिखाई दी।

"ऊंट वाला खिलौना तो मास्टरपीस है, पितामह," विश्वकर्मा ने चलते में बात चेप दी।

ब्रह्मा खुश नजर आ रहे थे।

"महाराज, इजाजत दें तो मैं अपनी एक शंका को स्वर दे दूँ," विश्वकर्मा ढरते-ढरते बोला।

"बोलो, क्यों नहीं," ब्रह्मा की दाढ़ी ऊपर-नीचे हिली।

"महाराज। आपने दो टांग वाला खिलौना जो बनाया है..."

"हां हां, आदमी," ब्रह्मा बोले।

"आदमी को दो टांगें दी और वे भी पतली-पतली । हाथ बिल्कुल खाली । इस डिजाइन के पीछे आपका मकसद क्या था ? इसकी पतली चमड़ी में सर्दी और गर्मी सहन करने की क्षमता नहीं । यह बेचारा हाथी, घोड़ा, सिंह, ऊट, मगर-मच्छ जैसे खिलौने के बीच कैसे रहेगा ? यह खिलौना तो जल्दी ही टूट जाएगा, मिट्टी में मिल जाएगा । कहीं हाथी वाली चान तो नहीं है । यदि आप उचित मामलों तो डिजाइन में तब्दीली कर ली जाए, मेरी सेवाएं आपके चरणों में हाजिर हैं ।"

"तुम भी आ गए ट्रेंप में, देवताओं का सर्वोच्च अभियन्ता भी बनकर में । खूब, खूब ।"

प्रजापति खूब ही बिसगिलाकर हसे । उनका नाभि-कमल भी बुरी तरह हिलने लगा मानो कोई भूकम्प आ गया हो । विश्वकर्मा दंग । पूरी बात समझ नहीं सके । घबरा गए ।

"पितामह, मैं आपके सामने तो एक घातकी और बदना-सा व्यक्ति हू, परन्तु मैंने क्या कोई गलत बात कह दी, जान-अनजान में कोई गलती हो गई हो तो मैं क्षमा-याचना करता हू, परन्तु मूलतः मैं बात समझा नहीं," विश्वकर्मा ने अनुनय-विनय के स्वर में बात कही ।

"देखो विश्वकर्मा, यह खिलौना दो टांग वाला और दो हाथ वाला, देवने में बहुत ही कमजोर और टूटने वाला सगता है । तुम्हें मालूम रहे, मैंने सबसे बाद में बनाया है और खूब सोच-समझकर । जब मैं इसका रचना-कार्य कर रहा था तो बड़ा ही बेचैन और क्षुब्ध था । मैं तुम्हें एक राज की बात बताए देता हू । तुम जानते हो कि यह त्रिमूर्ति की संस्था कितना बड़ा टकोसला है और इसके पीछे कितनी बड़ी साजिश है । मूल योजना तो यह थी कि एक सामूहिक शिष्टे-वारी, एक 'कलेक्टिव लीडरशिप' हो, परन्तु यिष्णु ने बिना प्रचार अपने-आपको सर्वोच्च साबित करने के लिए क्या नहीं किया ? शरर तो सबकुछ में भोता है । उसे तो 'एम्प्टिच पावर पोलिटिक्स' से प्रभाव कर दिया । भाते में लाकर उसके कपड़े तक उतरवा लिए । घामबर पहिना दी । सच पूछो तो शरीफ और भोले व्यक्ति का खमाना नहीं है । मूलरूप से यह समझो कि शिव के अहम् को या कम भीले स्वभाव को इकतप्तोपट किया गया । केवल चटपटी भाषा में कहा गया कि शिव योगीराज है, कामजीत है । शिव फूलकर फुल्ये हो गए । सत्री बेचारी

बोले गया ?

" शिव जैसे भीने रामाय के महादेव (केवल पन्नों में) विष्णु की चान को गया समझें ?

" मुझे बूझा नाबिश करके पण्डित देवताओं से चलन-चलन कर दिया। लगातार चरित्रहसन की प्रक्रिया चमती रही और वह भी इन तरह कि देवताओं में मेरा कोई अनुयायी नहीं रहने दिया। मेरी नहीं मूर्ति लगने नहीं दी। मेरा घर फांटकर रग दिया, अज्ञानी मुझसे मूठ अलग जा बंटी। नतीजा यह हुआ कि त्रिमूर्ति तो नाम मात्र की रह गई।

" समुद्र-मंथन के लिए देव और दैत्यों को उकसाया गया। जब कालकूट निकाला तो आप किनारा कर गये और मूनी चढ़ने के लिए कौन ? बेचारे शिव। मुझे याद है, शिव को किस तरह फुसलाया गया और जहर पीने के लिए उन्हें रजामंद किया गया। फुसलाकर। आगिर वह जहर उगका पिला दिया गया। बेचारे शिव के कंठ नीले पड़ गये और वे सदा के लिए नीलकंठ बन गये।

" परन्तु जब चौदह रत्न निकले तो आप सबसे आगे। लक्ष्मी को देखा तो बोले—यह तो मैं लूंगा। डर के मारे कोई देवता नहीं बोला और दैत्यों को आँखें दिखा दीं। मुझे तो हैरत होती है इन देवों के व्यवहार पर। उन्हें 'देव' कहना देवत्व का अपमान है। परन्तु जिन्होंने भुक्त-भुक्तकर स्तोत्र-स्तुतियां पढ़-पढ़कर देवत्व प्राप्त किया हो, वे न्याय के लिए लड़ नहीं सकते। उनमें न आत्मबल, और न आत्मा की आवाज जैसी कोई चीज।

" अगर ज़रा-सी भी आत्मतेज व न्याय के लिए लड़ने की हिम्मत होती तो वे फौरन वगावत का भण्डा खड़ा कर देते और एलान कर देते कि जिन्होंने समुद्र-मंथन किया है वे इसके हकदार हैं।

" परन्तु कौन बोले ! विष्णु लक्ष्मी को लेकर अलग हो गये और बड़ी बेशर्मी से घोषित कर दिया कि लक्ष्मी मेरी पत्नी है।

" चलो, यहीं तक ही बात ठहर जाती तो भी हम आई-गई कर देते, परन्तु अब आप लक्ष्मी के चक्कर में इस तरह फंस गये कि त्रिमूर्ति की संस्था तक बदनाम है, लक्ष्मी समुद्र की बेटी और वह अपना पीहर नहीं छोड़ना चाहती तो आप भी ससुराल चले गये। समुद्र में एक 'विला' बना लिया और वहीं रहने लगे और कुछ नागों को साथ ले लिया, शेषनाग उनका रिंग लीडर। इन नागों के

साथे मे अपने समुद्री विला मे पडे रहते हैं और आजकल लक्ष्मीरमणा कहलाने मे अपनी दान समझते हैं। इन देवो को देखो, स्तुति मे सजोषन कर लिया 'जय लक्ष्मी रमणा।' क्या बात हुई। पर इनकी बुद्धि का दिवाला निकल गया। ये हमारे देव !

"लक्ष्मी के सम्पर्क मे जाने के बाद तो विष्णु के लो हासबाल ही बदल गये। इस स्वर्ग का क्या हान होगा ? स्वर्ग की स्थिति बिगड़ती ही जा रही है, स्वर्ग मे कीन जाना चाहेगा और ऐसे स्वर्ग मे आकर कोई करेगा ही क्या ? स्वर्ग की पहली बात है कि वहा सुशासन हो। परन्तु जहर की सत्ता ही अपने-आपमे बिच्छिन और धराजकतापूर्ण हो, वहा कैसा स्वर्ग ! वहा का राज्यपाल इन्द्र अपने-आपमे करपट है। हर देवता के मुह पर नाम है तो किसी रम्मा या मेनका का है। देवो मे चूगली और चापलूसी बढ रही है। पर विष्णु को तो अपने समुद्री महल से निकलने की फुरसत ही नहीं। ये सब लोग 'रमणा' सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गए हैं। अब नये सम्बोधन चलेंगे, रम्मा रमणा, कोई मेनका रमणा। जब बुद्धि पर पर्दा पड़ता है तो पड़ता ही जाता है।

"मुझे जिस प्रकार अपमानित किया गया, मैं इस अपमान के घूट पीकर रह रहा हूँ, वह मेरा ही जी जानना है। यह जलानत-भरी जिनगी, मेरा खून गोल छटता है। परन्तु मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि ये देवलय तो पूर्णतया नपुमक है। ये तो हर प्रकार के अपमान व अन्याय को सहन कर सक्ते हैं। मैं तीनघों-टिड़ी मे विष्णु से किस बात मे कम हूँ।

"मैं जब वह खिलौना बना रहा था, तब मैं इस प्रकार की मानसिक उपेक्षा-बुन मे लगा हुआ था। कहने को मैं पितामह, पर मेरा कोई टोर या टिपाना नहीं रहने दिया। मैं स्वानभंग व मानभंग की स्थिति मे ही जीऊँ, मेरे लिए बिकल्प नहीं छोड़ा। प्रतिपक्ष की इस भावभूमि मे, प्रतिहिंसा, गुणा और गंजाम की इस पुच्छभूमि मे मैंने यह गिम्मीना बनाया।

"मेरा यह खिलौना आदमी कहलायेगा। पतली टांगो से बायुवेग से झट सकेगा, इसके बेग के सामने गड़बड़ भय्य भारेगा। मैंने सारी चीजें इसके दिमाग में भर दी हैं। इसके दिमाग के कोने मे भुराफात का एक सजाना बना दिया है, वह भुराफात घड़ता रहेगा।

"बहु इन कमजोरहाथो से पहाड़ उठा सकेगा। सारंगे हाथियों का बन डमरु

होगा। वह हवा में उड़ सकेगा, समुद्र में तैर सकेगा। ग्राम में जड़ेगा नहीं। वह हाथी पर सवार होगा, घोरे पर सवार होगा। वह बिना पैरों भागेगा। पानी बिजली उसके घा में होंगे।

“मेरा यह नाक का पुतला गलक में गलबली मना देगा। मैंने अपने सारे द्वेष, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या दमैरह की ग्राम उसके दिमाग में रख दी है। ये हैं मेरे जीन्म। मेरा यह पुतला विष्णु को ललकारेगा, उनका वहम निकाल देगा, डिफाई करेगा। इन देवताओं का मानभंग करेगा, नश्वी उनकी चेरी बन जाएगी और विष्णु टापता रहेगा।

“यह नाक का पुतला चुनौती देगा। विष्णु के अगर छक्के न छुड़ा दे तो मुझे विघाता न कहना। उसको लेंने के देने पड़ जाएंगे। यह ग्राम उगलेगा।

“मैंने अपनी सारी प्रतिहिंसा उसके दिमाग में रख दी। मैंने अपना सारा रोष उसके दिमाग में रख दिया है। यह है मेरी विरासत।

“रोष और प्रतिशोध की मनःस्थिति में बनाई हुई प्रजा से अन्य तरह की अपेक्षा ही नहीं की जा सकती।

“परन्तु मुझे एक भय जरूर है,” कहते-कहते ग्रहा गंभीर हो गया।

“वह क्या है?” विश्वकर्मा ने मोन भंग किया।

“घृणा, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध, रोष का ओवरडोज अन्य प्रकार से भी रिपेट कर सकते हैं।

“खाक के पुतले आपस में भी लड़ सकते हैं, अगर उन्हें लड़ने का अन्य वहां न मिले तो।”

“महाराज बात को कुछ और स्पष्ट करो।” विश्वकर्मा ने उत्सुकता दिखाई।

“अब तो मेरी रात होने जा रही है, मुझे नींद आ रही है इसलिए इतना समय नहीं कि मैं तुम्हें पूरी बात समझा सकूँ। मेरी आंखों में नींद घुल रही है। परन्तु भयंकर आक्रोश, संक्रास की मनःस्थिति में बनाए गए इस मनुष्य नामवारी पुतले के दिमाग में मैंने अपने मनोभाव पूर्णतया आरोपित कर दिए, सम्पूर्ण तीव्रता व तिव्रता के साथ।”

“महाराज, यह तो गजब हो गया, पुतले आपस में लड़ेंगे।” विश्वकर्मा बोला।

“कुछ भी समझो, मेरे दिमाग में अब कुछ नहीं है, मुझे नींद आ रही है।”

“कुछ मुछार करो।”

“ज ग ने प र दे खें गे।”

“इस दीव तो चार युग बीत जाएंगे।” ब्रह्मा खरटि भरने लग गया।

“कुकड़ू कू।”

“यह तो ब्रह्मा का खिलौना बोल रहा है, ब्रह्मा नहीं।”

ब्राह्ममुहूर्त हो गया, पर ब्रह्मा सो रहा है। ब्रह्मा की रात चल रही है, चलेगी। प्रलय-पर्यन्त। विद्वकर्म उठा, चल दिया, विष्णु के महा पेशी जो है।

भोमियो जी का मंदिर

वन ठहरी। मुझे उतरना था। यहां मे गांव कोई तीन कोस। मीलों में कोई छः मील। मई-जून के महीने में छः मील की यात्रा भी अपने-आपमें भयंकर कसरत है। हवा में दस्तगी गर्मी होती है कि ऐसे समय में यात्रा करने का मतलब होता है आग की लपटों के अन्दर से गुजरना। रेत दस्तनी गर्म हो जाती है कि आप रोटी सेंक लो।

मैं बस से उतरा उस समय कोई आठ बजे का टाइम होगा। तीन कोस की यात्रा के लिए कम से कम दो घण्टे तो चाहिए। बस से उतरते ही मुझे फिर इस बात की थी कि कोई ऊंट मिल जाए। रेत में जहां और कोई सवारी नहीं जा सकती, वहां ऊंट ही जा सकता है। गाड़ी घंस जाए। घोड़ा गड़बड़ा जाए।

दो-चार जगह से पूछने पर मालूम हुआ कि वैसे तो कोई जाने को तैयार नहीं होगा और हो भी गया तो ऊंट का भाड़ा लेगा 'हाड़ फोड़कर'। मैं इसके लिए तो तैयार था क्योंकि ओखली में सिर रख देने के बाद मूसल से नहीं डरना चाहिये, यह बात तो मैंने अनुभव से बहुत पहले सीख ली थी। परन्तु ऊंट तो मिले। अगर कुछ देर तक कोई ऊंट नहीं मिला तो सूरज सिर पर आ जाएगा। ऐसे वक्त में तो लोग मुर्दे को भी बाहर नहीं निकालते। बस, यही चिन्ता मेरे सर पर सवार थी।

मुझे एक ने बताया कि एक ऊंट लालासर का आया हुआ है और लालासर से मेरा गांव कोई एक कोस ही रहता है। अगर वह आदमी तैयार हो जाए तो मेरा काम आसानी से बन सकता है। मैं बात कर ही रहा था कि मुझे वह आदमी सामने आता हुआ दिखाई पड़ा। मुझे बताया गया कि यह है वह आदमी। बात कर लो।

मैंने उससे रामरमी की और वाद 'रामरमी' वह बोला, "चलो।" भाड़े के

लिए उसने अपनी तरफ से कोई पेशकश नहीं की। वह मेरी पाख छपये की भोफर पर तैयार हो गया।

उसने ऊंट को बैठने का संकेत दिया। ऊंट बैठ गया और उसकी थोड़ी-सी मदद से मैं ऊंट पर सवार हो गया। मेरे लिए ऊंट की सवारी का कोई नया अनुभव नहीं था, परन्तु काफी घर्से के बाद ऊंट पर सवार होने के कारण सवारी के अनुभव को नवीनीकरण करने की खुशी तो थी ही।

गांव से निकलते ही उसने ऊंट को एक ढगर पर डाल दिया और साथ में चल रही थी एक पक्की सड़क, जिसपर पत्थर संर उठाए हुए पड़े थे, शायद रौवर फेरने की स्टेज हो नहीं आई हो।

"तुम्हारा नाम क्या है?" मैंने पूछा।

"कालू।"

"जाति?" मेरा दूसरा सवाल था।

"मेघवाल।"

मैंने कालू के मुंह की तरफ गौर से देखा।

"क्यों, क्या देख रहे हो? मेरे साथ चलने में कोई आपत्ति तो नहीं है? अभी तो गांव से निकले ही हैं।" कालू बोला।

"आपत्ति काहे की? मैं तुम्हारी बात समझ नहीं, कालू।" मैंने कालू के मुंह की तरफ फिर देखा।

"यही कि मेघवाल हूं, अमार हूं और आपको मेरे साथ चलने में कोई दिक्कत हो, मन में प्पानि हो। मैंने आपसे कुछ नहीं छिपाया, न तो मन की बात और न अपनी जाति।" कालू ने अपना स्पष्टीकरण-सा पेश कर दिया।

"नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, मैं तो यह पूछ रहा था कि सड़क क्या बनी?"

"क्या आप इसे सड़क कहेंगे? यह पत्थर तो पिछले साल डाले गए। अकाल सहायता राहत-कार्य में यह सब कार्य हुआ। ये रेत भी डाली गई। बालू के महल की तरह यह बालू की सड़क बनाई गई। परन्तु इस सड़क बनाने में लोगों ने तबियत भरकर रेत लाई। बड़े-बड़े आदमियों ने तो तबियत भरकर रेत लाई। हम गांव वालों ने भी थोड़ी बहुत रेत लाई, पर गांव वालों तथा गरीब आदमियों को बड़े आदमी रेत लाने नहीं देते, उनका पेट बड़ा होता है। बड़े लोग ही भाटे

और पत्थर या जाने हैं घोर मजे की बात यह है कि ये गोंग भाटे-पत्थर-रेत सब हजम कर जाते हैं, टकार तक नहीं मंते। हम लोग देगते रहते हैं और हमसे कोई कोशिश करे तो समने नहीं देते। गरीब आदमी तो जूने समने पैदा होता है, कभी-कभी घबके भी खाते हैं, परन्तु ये बड़े लोग धून-पत्थर-कंकर खाते हैं। फिस्त में लिगाकर लाये हैं।" कालू ने एक समथी सांग गीनी।

मैंने फिर कालू की ओर देखा। उसकी घांगों में देखा। मुझे लगा कि कहीं गलत सह्यात्री का साथ तो न कर लिया। मुझे जरा आशंका भी हुई और दिमाग के एक कोने में भय का संचार भी हुआ कि कहीं मेरा 'फेतो ट्रेक्टर' दिमाग व इरादों से तो दुरुस्त है। निर्जन स्थान में एक अजनबी का साथ अपने नाप में कुछ आकर्षण भी ला सकता है। परन्तु ज्यों ही मैंने उसकी आंखों में आंख डालकर देखा तो उनकी पुतलियों में एक चमक दिखाई पड़ी। कालू हंस पड़ा।

"तुम क्या कह रहे हो? मैं तुम्हारी बात समझ नहीं।" मैंने सवाल किया।

"समझ तो मैं भी नहीं सकता, बाबू साहब। मैं तो बात बता सकता हूँ और और बात यही है, इसमें फर्क नहीं।" कालू बोला।

"बता सकता है वह समझा भी सकता है।" मैंने जिरह शुरू कर दी।

"यह जरूरी नहीं।" बाबू साहब।

"यह कैसे?"

"यह ऐसे, आज गर्मी पड़ रही है, हम लोग कहते हैं 'लाय' पड़ रही है। मैं यह जानता हूँ। पर आप पूछो कि यह लाय क्यों पड़ रही है? तो मैं आपको समझा नहीं सकता। वस यही बात यहां लागू है। अगर आप समझना चाहते हैं तो आप जाइए बड़े दफ्तर में जहां पाई-पाई का हिसाब कागजों में लिखा है कि इतनी रेत पड़ी है, इतने पत्थर पड़े हैं। कागज पर रेत पड़ी है, तो जमीन पर क्यों नहीं पड़ी? आप बड़े अफसर को साथ लाइए और उसे कहिए कि अपने कागज साथ ले चलिए। फिर यहां लाकर उसे कहिए कि मिलान करो कागज की रेत का और जमीन की रेत का। कागज पर पड़ी है दो लाख क्यूबिक फुट रेत और जमीन पर है पचास हजार क्यूबिक फुट। यह डेढ़ लाख क्यूबिक फुट रेत कहां गई? जमीन पर तो है नहीं। कोई न कोई तो इस रेत को खा ही गया होगा। हो सकता है कि अकेला आदमी इतनी रेत नहीं खा सकता तो मिलकर खा गये

हीने। रेत तो साईं गई है। कुछ दूर तक ये परपर हात दिये। जैसे दफ्तरी में कागजों पर कुछ रस देते हैं कि कागज उड़ न जाए। बस इसी तरह इस रेत पर ये भाटे रख दिये ताकि यह रेत उड़ न जाए।

“कागज में रेत नहीं उड़ती चाहे कितनी ही धाँचियाँ आए, तूफान आए। धसबत्ता कागज उड़ सकता है। अगर कागज उड़ सकता है तो रेत भी उड़ सकती है, इसलिए कागज को बाँधकर रखते हैं, तपेटकर रखते हैं। अब सारा धाम कागजी।

“कागज में नहर बहती है, पर कागज गसता नहीं, यह कागज बनाने वालों की तारीफ है। पर कागज में सड़क दोड़ती है। कागज में कुछ लाइनें सींचीं कि सड़क बन गई। यह धाम रोज़मर्रा करते हैं। कागज में सड़क बनाने में एक्स-पर्ट है। पर जब जमीन पर सड़क बनाने का काम पड़ता है तो उनको एक दिक्कत आती है, कागज में तो चार भादमी खयादा लगाए तो उनका काम निकालने के लिए एक मशीन है जो जोड़-खाकी लगा देती है। काम पूरा हो जाता है, भादमी चाहे बैठा रहे। परन्तु जमीन पर हिसाब गड़बड़ा जाता है। सड़क पर काम करने वाले मजदूर साथ खेलने लग जाते हैं, मेट चीपड़ खेलने लग जाते हैं, इजीनियर और भोयरसियर सिनेमा या सोरिंग करने चले जाते हैं तो सड़क भी ठहर जाती है, भागे चलती नहीं। धाम को भोयरसियर आता है, ‘लोगबुक’ भर देता है। जमीन की सड़क चली कि नहीं, वह परवाह नहीं करता...”

कालू तो शायद रुकने का नाम ही नहीं लेता, परन्तु जब ऊंट रुक गया तो उसको खयाल आया कि वह ऊंट पर सवार है। उसने टिच-टिच की, पर ऊंट हिला नहीं।

“क्या बात हुई?” मैंने पूछा।

“‘बीड’ कर रहा है। आज सुबह से उसने ‘बीड’ ही की नहीं।” कालू ने जबाब दिया। मैंने उसकी तरफ देखा और वह शायद मेरी मन की बात समझ गया, बोला:

“पेशाब कर रहा है ऊंट।” बयो, ऊंट को बिठनाऊ, आपको भी कोई हाजत हो।” यह कहते हुए उसने ऋत से बागदोर के कुछ अशुभपूर्ण ऋतके लगाए और ऊंट बैठ गया। मैं उतरा और कालू भी।

मैं तो अपनी संका का क्षीम ही निवारण करके आ गया। कालू ने कुछ सूते

तिनके झकड़ते गले से थे, मुझे गलाज कुल्लुन हुआ और पृथ वीठा, "यह क्या हो रहा है कालू ?"

"देगो, नाई नाई खान तिनने कि सामने आ जाते थे। अभी सामने आ जाते हैं।" उसने तिनकों में आग लगाई। अपने पैर के घंगूटे और खंगुनी के सहारे से धमाई हुई चिलम में घंगारे रंगे, चिलम के छोटा-सा कपड़ा नपेटा और जोर से दम गीला और उमला मुंह घुएं से भर गया।

"आप घोड़ी-निगरेट नहीं पीते क्या, बाबू साहब।" उसने एक जानकारी चाही।

"नहीं।" मैंने जवाब दे दिया।

"तो, चलो बंदो ऊंट पर, मूरज सिर पर आ जायगा।"

"पर तुम्हारी चिलम तो पूरी हुई ही नहीं।"

"इसकी फिकर मत करो, ऊंट पर ही पी लूंगा।"

हम दोनों ऊंट पर सवार। कालू ने दोनों टांगें एक तरफ कर लीं। वह अपनी चिलम का कड़ा भी खींचता जाता और टिच-टिच भी करता जाता।

"क्यों कालू, क्या हम अब सड़क के साथ-साथ नहीं चलेंगे?" मैंने अपनी सूचना के लिए बात पूछ ली जैसे हम रेलवे इन्जिन से पूछते हैं।

"यह सड़क चाहे साथ-साथ चले या अलग चले, कोई फर्क तो पड़ता नहीं। सड़क पर तो कोई चल नहीं सकता। आदमी पैदल चले तो अब्बल तो उसे हाथ में दूसरी जोड़ी जूतों की लेकर जलनी चाहिए।"

मुझे जरा हंसी आ गई।

"बाबू साहब। हंसते क्या हो, जरा गाजमाकर देख लो। इसपर न कोई बेलगाड़ी चल सकती है, न कोई बैसागाड़ी और न कोई ऊंटगाड़ी।" कालू के मुंह से बात भी निकली और चिलम का धुआं भी।

"पर कच्चे रास्ते से तो ठीक ही होनी चाहिए।" मैंने कहा।

कालू को मेरी बात पर हंसी आ गई या कोई चिलम के घुएं ने फेफड़ों में कोई 'इरीटेशन' पैदा किया हो। खुलखुलाते हुए बोला, "देखते हो अपना ऊंट। इस कच्चे रास्ते से तो हजारों ही बार चल सकता है, परन्तु इस सड़क पर इस ऊंट को डाल दो, इसके पैर छिल जाएंगे। ऊंट के साथ जोर या जवर्दस्ती करो तो ऊंट टूट जाएगा। आज ऊंट के ढाई हजार रुपये लगते हैं, आज ऊंट

सरोदना तो हवाई जहाज सरोदनी है।" कालू ने बात सतम ही नहीं की थी कि मुझे हसी आ गई और मैंने पूछा।

"क्या तुम्हारे हिदाब में हवाई जहाज की कीमत ढाई हजार होती है?"

"देखो जी, यह तो बात की बात है। ढाई हजार नहीं तो पांच-दस ऊंट की कीमत लगती होगी, और क्या हाथी की कीमत लगती होगी?"

मुझे बड़े जोर की हंसी आ गई। कालू सहमा और उसे लगा कि उसने बहुत ही घटपटी बात कह दी। सफाई देने लगा।

"देखो बाबू साहब, यही कीमत तो उसको पता हो जिसने कोई चीज मूल्याई हो, पर गांव नहीं जायें तो 'गैला' क्यों पूछें? हमें हवाई जहाज से क्या लेना-देना? जब कभी हमारे गांव के ऊपर से मनभनाहट करता हुआ जाता है तो हम सब लोग ऊपर की ओर मुंह फाड़कर देखने लगते हैं। भू-भा तो बड़ी जोर की होती है, परन्तु लगता तो ऐसा है जैसे कि कोई उड़नखटोली। सोचते हैं कि हममें गांव का गांव आ जाता है। मेरी तो समझ में नहीं आता कि ऐसे कैसे हो सकता है। फिर सोचता हूं कि मुझे तो इसमें बैठना नहीं, फिर अपनी बत्ता से कैसे हो ही। अपना तो यह ऊट ही हवाई जहाज है। जब यह जोर से भागता है तो हवाई जहाज जैसे ही होण्डे भागें हैं।"

"यह तो ठीक है, कालू! पर तू तो कह रहा था कि हवाई जहाज कोई हमी घोड़ा ही है? क्या तूम सोचते हो कि हाथी हवाई जहाज से महंगा होता है?"

"इसमें क्या दोष है, बाबू साहब? हाथी तो भरा हुआ भी नौसाब का होता है, फिर जीते जी तो उसके मोल का कोई क्या अन्दाजा लगा सकता है? आपका हवाई जहाज टूट जाए तो टूटा हो जाता है, एक टका नहीं बटता। लोग कहते हैं कि हवाई जहाज से कोई गिर जाता है तो एक फायदा बकर होता है?..."

मैं उछला, "गिरने से क्या फायदा होता है?"

"मरने जाने की हड़दी हरिद्वार भ्रमने की जरूरत नहीं होती। हरिद्वार आने-जाने का सफा तो बच ही जाता है, मरने जाने की तो मरना ही पड़ता है, मौत की पड़ी तो टलती ही नहीं। दियाता ने छटी के रोज जो सेवा सिख दिए वे तो सीधे की लारी हैं। छाले टग नहीं सकती। परन्तु हरिद्वार के आने-जाने का सफा भी धाज के महमाई में मार देता है। यह तो मैं अंगलभोगी हूं। पिछले साल मैं सरनी मां के फून लेकर गया। बड़ी मुसीबतों के साथ पहुंचा, मां की गले में

निए हुए गढ़े हंगे धीर बह उनसे गिड़गिड़ाकर बह रही थी जैसा कि उसने सारी बिन्दगी-भर बेबस बिड़गिड़ाने की भाषा सीखी थी, उनसे कुछ मोहलत मागी होगी और ज्योंही मैंने हाँ कह दी, उसने हाथ फैला दिये । जम के दूतों ने उसे हथकाड़ा पहना दी होगी । मैं तो इसको इसी प्रकार लेता ॥ । जम के दूत तो हरेक को दिखाई नहीं देते, सिवाय मरने वाले को, लोग ऐसा कहते हैं । मैं झूठी गंगा-जलो नयो उठाऊँ ? पर अगर यह बात सच है तो मैं इतनी बात जरूर कह सकता हूँ कि जम के दूत हमारे सरकारी सिपाहियों से ज्यादा दयालु है । अगर इन दूतों के बजाय जमराज इन सरकारी सिपाहियों को यह काम सम्भलवा देता तो ये लोग मेरी माँ और मेरे बीच पूरी बात नहीं होने देते । इनमे न सोसत्र है, न सहानुभूति ।

"मैंने बारह-छ. महीने इन्तजार नहीं किया । गिड़गिड़ाकर कर्ज की परत मोटी कर ली । भा को हरिद्वार पहुँचा दिया । गंगा मैया के दर्शन से मुझे एक बात का ज्ञान हुआ कि कोई मरकर हरिद्वार नहीं जाए । जाए तो ज़िन्दा ही आए । गंगा मैया से बात कर ले । जहाँ चाहे और जब चाहे गंगा की गोद में चला जाए । ये पण्डे लोग रास की तो मट्टी पत्तीत करते हैं । सब वृद्धों तो अगर परमात्मा मुझे मिल जाए और कहे कि एक ही घर भाग तो मैं तो यही कहूँ कि जोर से एक बम का धमाका कर जिससे एक बहुत बड़ा गड्ढा बन जाए कि उसमें सारे पण्डे, सामाजिक व राजनैतिक, पंच, सरपंच, ग्याय-पंच, सारे सरकारी अफसर, नेता, एम. एल. ए, एम पी. काँग्रह सब उसमें समा जाए, फिर वापस गड्ढा बूर दिया जाए । इन सबकी तो समाधि हो जाए । अगर ये राज और समाज दोनों ही शुधर जाएँ ।" कालू ने एक ठण्डी सास ली ।

"नहीं तो ?"

"नहीं तो यह कुत्ते मार देंगे, राज को भी और समाज को भी । कुत्तों से भी मादमी 'पुचकार'-बुचकार से काम चला सकता है । परन्तु मैं सारे के सारे 'हिड़के हुए कुत्ते । यह हिड़क इस हद तक फैल गई है कि जीने के लिए इनसे बचकर रहो, इनके रास्ते से भलग रहो ।

"कुछ लोगों की अपने ऊपर बड़ा नाउ था । बोले कि इनकी हिड़क ठीक करने देंगे, हमने उन्हें समझाया कि इनकी हिड़क ठीक नहीं होगी । तुम खुद इनके साथ हिड़क जाओगे और दुआ भी यही । ये भले-बुरे लोग भी हिड़क गए ।

"अब हम तो इनसे इतने डर गए हैं कि जब ये 'हाऊ-हाऊ' करते हैं तो हम

कृष्ण नहीं कहते यन्त्रि। कनकी देख में देख निम्नाने प्रीति प्रम प्रसाद हाज-हाज
होती है सब हम निम्नाने है, जग ताऊ, हा ताऊ। "। "

मनुके हमी था मई ।
"तुमको क्यों हो बाबूजी ? मन्गी मत है । मन्गी खादमी की क्या हिन्त
जो इस हिन्दू के रूप कुनों का मूल बना करे । इसनिष्ठ हम तो ये जिनको कहते हैं
चोट दे देता है, चोट मचा देता है, अपना पिता छुड़ाना है ।"
ये बातें सुनकर भरे दिमाग में एक प्रतिधिया यह हुई कि इस देव
के नामें सुनकर भरे दिमाग में एक प्रतिधिया यह हुई कि इस देव

तो यह कहते हुए कुत्तों का मुँह बन्द कर दिया। इससे कुत्तों को कुछ दिक्कत हो गई। वे सोच रहे थे कि अब क्या करना है। अपना पिछड़ा सुझाना है।" कानूनी बातें सुनकर मेरे दिमाग में एक प्रतिध्वनि यह हुई कि इस देश में बात का मोल नहीं है। जिन आदमी के मुँह से बात निकलती है, उसका मोल तो भी वह बात बेमानी होती है। जो उमके मुँह से बात और कानूनी बात भी निकल जाए है। अगर आदमी बड़ा है तो उसके मुँह से बात और कानूनी बात भी कमजोर आदमी के मुँह से निकल जाए तो कौन उमको मुनेगा? मजाक बनकर रह जाएगी।

तो भी वह बात बेगकीमती है। परन्तु यजगदार बात तो
मुंह से निकल जाए तो कौन उगकी मुनेगा ? मजाक बनकर रह जाएगी।
कालू मेघवान का दिमाग कितना फोटोग्रेफिक है ! उसके दिमागो कैमरा
के सामने जो भी चीज आती है, उसके दिमाग के कैनवान पर चित्र बन जाता
है। स्पष्ट और अमिट। पर किसने यह जानने की कोशिश की कि कालू मेघवाल
पया सोचता है, किसने उसके दिल की गहराइयों में उतरकर उसकी पीड़ा तथा
उसके जज्बातों के तूफानों के वेग की गति जानने की कोशिश की ? मुझे कालू
मेघवाल एक प्रतीक प्रतीत हुआ, एक ऐसे वर्ग का जो तूफानों को अपने अन्दर
ही भेलते रहते हैं। मुझे कालू से हमदर्दी हो गई।
“तुम्हारे पर कर्जा है, कितना है ?” मैंने पूछा।
“मेरे पर कर्जों के सिवाय कुछ नहीं है। मेरे पर ही न

"कालू, तुम्हारे पर कर्जा है, कितना है?" भैने पूछा।

“कालू, तुम्हारे पर कर्जा है, कितना है ?” भैंने पूछा।
“बाबू साहब, आपने भी क्या बात पूछी ? मेरे पर कर्जों के सिवाय कुछ नहीं। मेरे पर अहसान तो किसीके हैं नहीं, कर्जा सारी दुनिया का है। मेरे पर ही नहीं, मेरे पास जो कुछ है उसपर भी कर्जा है। इस गरीब ऊंट पर भी कर्जा है। कर्जा भैंस पर भी कर्जा है, मेरे खेत पर भी कर्जा है। मेरे वालों पर भी कर्जा है। कर्जा से बची हुई कोई चीज है ही नहीं। सब कुछ चला जाए तो भी कर्जा छोड़कर मुझे नहीं जाएगा। पर...”

“तुम्हारे पर कर्जा है तो तुम्हारे से अलग ऊंट थोड़े ही रह जाएगा !”
 “नहीं, बाबू साहब। आप समझे नहीं। इस ऊंट पर हजार रुपये का कर्जा है।
 ऊंट रहन खा हुआ है। ऊंट चल रहा है और साथ-साथ इसपर कर्जा भी। पर
 यह तो रोजमर्रा का काम। ऊंट भी आदी है। वोभू ढोने का जानवर तो वोभू

ही दियेगा।" बालू ने ऊट को ऐढ़ लगाई और एक नारा भी 'भरे तेरा घोर'।

ऊट ने गति पकड़ी। ऊट को एक घोरे पर चढ़ना था। ऐसे घोरे पर किसी जीप या ट्रक वाते को भी चढ़ना पड़े तो वह भी ऐसी हालत में गिरर बदलता। मैंने भी बात का गिजर बदला।

"देगो, यह घोरे भी अजीब हैं कालू।"

"घोरा सोरा भी है घोर दोरा भी," बालू ने अपनी मोतचात की भाषा में बात का जवाब देना शुरू किया। "परन्तु घोरा मूल में ईमानदार है।" मैंने कालू के मुह की चरक देखा।

"देगो, बालू साहब, बात बड़ी सीधी है। घोरे पर चढ़ते हैं तो तकलीफ होती है। उतरते हैं तो सतनी ही सुबिधा होती है। गड़बड़ता हिराव पूरा हो जाता है। घोरा कोई बेगार नहीं रहना।" बालू बड़ता जा रहा था। और बीच-बीच में टिच्-टिच् भी करता जाता था। ऊट घोरे पर चढ़ता जा रहा था।

"अब हम चितने दूर आ गए हैं कालू?" मैंने प्रसंग बलाया।

"यह घोरा आध में है। अब हम इस घोरे पर चढ़ जाएंगे तो तुम्हें गांव दिगाई देने लग जाएगा।" कालू ने कहा।

थोड़ी देर में ऊट घोरे पर था। सामने गांव के मोपडे दिखाई दिये और एक शुभ्र भी। समता था कि पक्का मकान एक ही है। बाकी सारे मकान कच्चे ही दिखाई दिये।

"यह लो, तुम्हारा गांव तो आ गया कालू।"

"अभी लो, पीन कोस लो होगा ही। हम सोझ इसे 'कंवली' एक बोस गिगते हैं।"

"यह पक्का मकान कोई मंदिर मानूम देता है। काहे का है?"

"यह मंदिर है भोमियो जी का।"

"भोमियो जी कौन-से देवता हैं?" मुझे आश्चर्य हुआ।

"भोमियो जी का नाम नहीं सुना?" कालू को आश्चर्य हुआ।

"मैंने और सारे देवताओं के नाम सुने हैं, हनुमानजी, भैरवजी, शनिश्चरजी, रामचन्द्रजी, पर भोमियो जी का नाम नहीं सुना।" मैंने अपनी जानकारी की बात कह दी। "हरेक गांव में एक भोमियो जी होता है और हम कहते हैं कि वह 'सेड़े' का मालिक होता है।" पर कालू ने अभी बात पूरी नहीं की थी कि मैंने पूछ

मिया वि 'मेरा' जिसे कहते हैं।

"जैसे हम गांव का खेत है बड़ा-बड़ा होता है, वैसे गांव का गांव खेत होता है। जैसे भूख भूख था खेत है, गांव खेत हमारे गांव। जहाँ तक इस गांव की सीमा जाती है वहाँ हम गांव का गांव खेत होता है और यह भूमि जो हम गांव का गांव है। हम गांव की खेत जाती है जिम्मा होता है गांव के गांविक का। गांव के गांव रहने वाले गांविकों, पशुओं और हमारी फसलों की रक्षा भूमि जो करती है। गांवों को हम गांव में पशु मंदिर या ही नहीं। गांव के बाहर हमने गांव की 'पशु' रखी थी। हम उम्मे भूमि जो गांव की मेजड़ी कहते हैं और वह एक छोटा-सा पशु बना रहा था।

"तीन लाख पशु हमने गांव मंदिर बनाया। मेरा ही एक ताल का बेटा है लालू मेघवाल। उम्मे भूमि जो गांव का इष्ट भी है और वही दिया-धूप किया करता था। उसने बड़ी मेहनत की, मोटा-बहुत बड़ा किया और हम गांव वालों ने उसकी मदद की और हम तरह-तरह हम गांव में मिलाकर गांव मंदिर बनाया। यह हमारा देवता है, हमारे गांव का देवता है।"

कालू ने मंदिर की ऐतिहासिकता बयान कर दी। ऊंट अपनी गति से चला जा रहा था। उसका मुँह भी चलता जा रहा था।

"यह तो ठीक है। क्या तुम्हारे गांव में और किसी देवता का और कोई मंदिर नहीं है।" मेरे मुँह से निकल गया।

"ना।"

वह काफी देर तक सोचता रहा और न जाने क्या सोचकर बोला, "और न और मंदिर की आवश्यकता ही है।"

"यह कैसे?" मुझे आश्चर्य हुआ।

"बाबू साहब! 'भूमि जो' के अलावा और देवता हमारे गांव में रह ही नहीं सकते।" कालू ने जैसे बहुत सोचकर बात कही हो।

"यह तो और भी आश्चर्य की बात कह रहा है, समझा तो सही।" मैं कालू की बात में और भी ज्यादा इण्ट्रेस्टिड हो गया।

"देखो, सही और सच्ची बात में तो आश्चर्य होना ही नहीं चाहिए।" कालू ने समझना शुरू किया, "हमारे गांव में ज्यादातर बस्ती मेघवालों की है। दूसरी जातों के घर तो गिनती के हैं। रामजी, कृष्णजी, हनुमानजी वगैरह का यहाँ

मंदिर हो तो उन्हें भी आफत हो जाए और हमे भी ।”

“पुम्हारी बात तो बड़ी ही मजेदार है । यह कैसे ?”

“आप बात सुनो तो सही,” कालू ने कहना जारी रखा । “ये सारे के सारे बहुत बड़े देवता हैं । इनको सारी दुनिया पूजती है । बड़े-बड़े सेठ-भादूकार हैं इनके भक्त । ये ऊँचे-ऊँचे दर्जे के भगत इनके मंदिरों में लाखों ही रुपये का चढ़ावा चढ़ाते हैं, बड़े-बड़े प्रसाद चढ़ाते हैं । मिथी-मेवा के । केसर का भोग लगता है । फिर बड़े-बड़े पंडित लोग उनकी पूजा करते हैं, भारती उतारते हैं । संस्कृत में, हिन्दी में । इतने बड़े-बड़े देवताओं को भगर गांव में से घाए तो वे भी दुब पाए और हम लोग भी । हम लोग गरीब हैं जिन्हें भूख से ही ‘भेटा’ करना पड़ता है । कहा से ले घाए प्रसाद ? कहा से ले घाए पंडित जो इनकी पूजा करें ? ऐसी हालत में इतने बड़े देवताओं की मिट्टी पसीत करने से पुण्य तो रहा दूर, पाप की गठही बघती है । क्यों अच्छा न्योते और क्यों दो बुनाए ।

“ फिर इतने बड़े देवताओं को तो सारी दुनिया की फिर पड़ी है । दुनिया कितनी बड़ी है । हमारा गांव एक छोटा-सा । दुनिया के मुकाबिले में तो हमारा गांव ऊट के मुंह में जीरा के समान है । इतने बड़े देवता हमारे गांव की फिर करें । हमारे गांव-भैंस ऊट की फिर करें, तो जघने वाली बात नहीं । हमें तो चाहिए था एक ऐसा देवता जिसे हमारे गांव की फिर हो, हमारी फिर हो, हमारे पशुओं की फिर हो । मान लो कि कल हमारे ऊट का पेट दर्द करने लगे तो भगवान राम क्या करें । रामचन्द्रजी के मंदिर में जाकर कोई भर्दास करे कि महाराज हमारे ऊट का पेट ठीक कर दे तो कितनी घटपटी बात लगे । यह तो हाथी से हल चलवाने की बात हुई । रामचन्द्रजी को कहाँ पुरसत कि वे ऊट के पेट ठीक करें । रामचन्द्रजी महाराज तो भयोप्या में पैदा हुए, राजा के बेटे थे, उन्हें ऊट की बीमारियों और उन्हें ठीक करने का क्या पता ?

“ हमारा भोमियो जी तो इस गांव के देवता है, माविक है । उन्हें हम गांव की सीमा से बाहर की चीज से कोई लेना-देना नहीं । ऊट को पेट दर्द हुआ कि हम भट ने उनके पास पड़ुब गए । ऊट को भी साथ में ले गए कोई डोरा, ताती लेकर उनका नाम लेकर ऊट के बाप दी । ऊट ठीक हो गया, गाए ठीक हो गई ।

“ भोमियो जी के हमसे बढ़कर कोई भक्त नहीं । न वे कहते हैं कि हमारे प्रसाद के लिए पेड़ें सामो, रसगुल्ले । हम जो खाते हैं, उन्हें खिला देते हैं, वे प्रसाद ग्रहण

कर बैठे थे। उन्हें कुछ ही गिना दो। 'वाकला' भीगी हुई बाजरी की धूसरी, बड़े, गुलगुले सब बतले थे।

"उनकी पूजा के लिए कहे-निर्भे पुजारी की आवश्यकता नहीं। 'भोमियो जी' को न संस्कृत आती है और न शर्त ही लगा रही है कि उनकी आरती संस्कृत में हो या हिन्दी में। बस घूँस में दिया घोर काम पूरा हुआ। कोई प्रदक्षिणा करनी हो तो मन में ही सरदान कर दो।

"इन सब के अलावा, इस गाँव में सबसे ज्यादा हैं मेघवाल। मेघवाल का भगवान क्या करे? भगवान की जूनिया गाठनी हो तो मेघवाल काम प्रा सकता है। आप ही बताओ, क्या मेघवाल भगवान् का पुजारी हो सकता है? पर भोमियो जी इन सब बातों का विचार करते ही नहीं। भोमियो जी का भोपा कोई ही हो सकता है। न कोई जात न पाँत।"

"कालू, तू तो कमान की बात करता है, तू तो ऐसी बात करता है जो न तो मैंने आज तक पढ़ी और न सुनी।"

मैं अपने मन के उद्गार व्यक्त करता, पर कालू में तो जैसे कोई इन घोरों में भटकती हुई कोई घोरों की रूह घुस गई। घोरों में जब जोरदार आंधी आती है तो वह किसीका कहना नहीं मानती। घूल का तूफान बड़ा भयंकर होता है, घूल में दब जाते हैं, आदमी, ऊँट। कालू में बस घोरों की रूह कहां या घोरों में घूल खाता हुआ कोई भूत घुस गया। कालू ने कहना जारी रखा :

"यही तो बात मैं कह रहा था, याबू साहब। जब आपको मेरी बात नई और अनहोनी लग रही है तो फिर वे देवता जिन्हें हम-आप लोग पूजते हैं, वे कैसे हमारी बात समझ सकते हैं। वे कतई हमारी बात नहीं समझ सकते हैं। यह भी आप समझ लो कि हमें बड़े देवताओं की जरूरत ही नहीं। हमें कलेक्टर का क्या लेना, कलेक्टर कैसा ही हो। हमारा काम पटवारी से पड़ता है, अगर हमारा पटवारी ठीक है, वह हमारी सुनता है। वह अपनी किताबों में, वहीखाता में हमारा काम नहीं बिगाड़ता तब तक हमें कोई दिक्कत नहीं। कलेक्टर खुश हो यानाराज, हमें क्या फरक पड़ता है। पहली चीज तो यह है कि कलेक्टर का काम पड़ता है बड़े-बड़े लोगों से। हममें से कोई उसके पास चला जाए तो वह हमसे क्या बात करे, हम उससे क्या बात करें? मान लो कि हम उनसे कहें कि साहब, हम इस ज़िले में फलां-फलां गांव में रहते हैं तो पहले तो कलेक्टर को गांव का नाम ही नहीं मालूम होगा जब तक

वह कोई रजिस्टर न देख ले। रजिस्टर देखकर उसने यह भी जान लिया कि फला-फला गांव वहां हैं तो उससे भी क्या हुआ? वह न तो मुझे जानता है और न मेरे बाप को। मैं तारा कोशिश करू तो भी वह हा-हू करके टरका देगा या कह देगा कि फला-फला अफसर से मिल। अगर मैं यह कहने की गुस्ताखी करू कि मैं तो आपके जिले की प्रजा हूँ, आप जिले के मालिक हैं, इसलिए आप और मेरा रिश्ता मालिक और बन्दा का रिश्ता है, तो आप ही मन्दाजा लगा लो, ऐसी हालत में मेरे साथ क्या हो सकता है। हो सकता है कि वह मुझे धक्का देकर निराशावा दे। उसकी तो जीभ हिलनी चाहिए, सिपाही तैयार बैठे हैं, फौज तैयार बैठी है। अगर वह जरा नेकदिल और मेहरबान हुआ गो कह देगा कि तेरे जैसी प्रजा लाखों में बैठी है। तेरे झकेरे का कोई ठेका है, मेरे पास टाइम नहीं है, जाओ। मेरे पास क्या रह जाएगा सिवाय उसके कि मैं अपना-सा मुह लेकर धुपचाप आ जाऊँ, अपने गांव में। सो बाबू माहब, बड़ा कोई हो, मादमी हो या देवता, अपने-आपमें एक बड़ी बीमारी है। बड़े भ्रादमियो की बड़ी बीमारियों को बजह में ही आज बुनिया दुखी है। बीमारियां उनकी और दुख जाए हम लोग, छोटे लोग।”

कालू! मैंने बात कहनी चाही। पर कालू तो थोरो की आधी के वेग से उड़ रहा था, वह अब किसीकी क्या सुने? उसने कहना जारी रखा।

“बड़े भ्रादमियो की दो बड़ी बीमारियां होती हैं और अगर इन बीमारियों का समय पर इलाज नहीं होता है तो आसपास के लोगों को भी मरना पड़ता है और खुद बीमार को भी।” मैं बीच में कुछ कहूँ उससे पहले ही उसने दोनों बीमारियों के नाम बता दिए—“पेट का बड़ना और चोंच का बड़ना।”

“ये क्या बीमारियां हुईं?” मैं चौंका।

“यही तो बात है।” कालू जोर से हसा और कहना बला गया। “जब आदमी बड़ा होना शुरू होता है तो उसके चोच घाना शुरू हो जाती है, जैसे पीठी के पर। चोंच शुरू में तो छोटी होती है पर ज्यों-ज्यों उसके जय-जयकार के नारे शुरू होते हैं तो उसकी चोच बढ़नी शुरू हो जाती है और माप-माप में उसका पेट भी। देखो, जैसे लोग कहते हैं कि मंचों में ताकत होती है वैसे ही इस जय-जयकार में भी यह ताकत होती है, चोच उगा देती है और उसका बड़ना शुरू हो जाता है। चोच के साथ पेट का भी हिस्सा है। जब तक यह जय-जयकार चलती रहती है तब तक ये दोनों चीजें बढ़ती रहती हैं। जितनी और ते जय-जय-

कर लेने दे। उन्हें कुछ ही मिनटों में। 'बाक'रा' भीगी हुई बाजरी की घूँसी, बड़े, गुलगुले सब पड़ोने दे।

"उनकी पूजा के लिए पड़ोसियों ने पुतांगी की आवश्यकता नहीं। 'नोमियो जी' की न संस्कृत आती है और न उन्हें ही माला माली है कि उनकी आरती संस्कृत में हो या हिन्दी में। दम धूम में दिया और काम पूरा हुआ। कोई घरदास करती हो तो मन में ही संस्कार कर लो।

"इन सब के अलावा, हम मान में सबसे ज्यादा है मेघनाथ। मेघनाथ का भगवान क्या करें? भगवान की जुगिया माटनी तो तो मेघनाथ काम घा सक्ता है। आप ही बताओ, क्या मेघनाथ भगवान का पुतारी तो मकता है? पर नोमियो जी इन सब बातों का विचार करने ही नहीं। नोमियो जी का भोपा कोई ही हो सकता है। न कोई जात न पात।"

"कालू, तू तो कमाल की बात करता है, तू तो मेरी बात करता है जो न तो मैंने आज तक पढ़ी और न सुनी।"

मैं अपने मन के उद्गार व्यक्त करना, पर कालू में तो जैसे कोई इन घोरों में भटकती हुई कोई घोरों की रूह घुम गई। घोरों में जब होरदार आंधी आती है तो वह किसीका कहना नहीं मानती। घूल का तूफान बड़ा भयंकर होता है, घूल में दब जाते हैं, आदमी, जंतु। कालू में बस घोरों की रूह कहां या घोरों में घूल खाता हुआ कोई भूत घुस गया। कालू ने कहना जारी रखा :

"यही तो बात मैं कह रहा था, बाबू साहब। जब आपको मेरी बात नई और अनहोनी लग रही है तो फिर वे देवता जिन्हें हम-आप लोग पूजते हैं, वे कैसे हमारी बात समझ सकते हैं। वेकतई हमारी बात नहीं समझ सकते हैं। यह भी आप समझ लो कि हमें बड़े देवताओं की जरूरत ही नहीं। हमें कलेक्टर का क्या लेना, कलेक्टर कैसा ही हो। हमारा काम पटवारी से पड़ता है, अगर हमारा पटवारी ठीक है, वह हमारी सुनता है। वह अपनी किताबों में, बहीखाता में हमारा काम नहीं बिगाड़ता तब तक हमें कोई दिक्कत नहीं। कलेक्टर खुश हो या नाराज, हमें क्या फरक पड़ता है। पहली चीज तो यह है कि कलेक्टर का काम पड़ता है बड़े-बड़े लोगों से। हममें से कोई उसके पास चला जाए तो वह हमसे क्या बात करे, हम उससे क्या बात करें? मान लो कि हम उनसे कहें कि साहब, हम इस जिले में फलां-फलां गांव में रहते हैं तो पहले तो कलेक्टर को गांव का नाम ही नहीं मालूम होगा जब तक

रजिस्टर देखकर उसने यह भी जान लिया कि मे भी क्या हुआ ? वह न तो मुझे जानता है और जान कर तो भी वह हा-हू करके टरका देगा या र से मिले । अगर मैं यह कहने की गुस्ताखी करूं तो हूं, आप जिले के मासिक हैं, इसलिए आप घोर का रिश्ता है, तो आप ही भन्दाजा लगा लो, ऐसी ता है । हों सक्ता है कि वह मुझे धक्का देकर निकली चाहिए, सिपाही तैयार बैठे हैं, फौज तैयार है और मेहरबान हुआ भी कह देगा कि तारे जैसी तले का कोई ठेका है, मेरे पास टाइन नहीं है, जामों । तब उसके कि मैं अपना-सा मुह लेकर खुपचाप भा साहब, बड़ा कोई हो, भादमी हो या देवता, अपने-पड़े भादमियों की बड़ी बीमारियों की बगल से ही या उनकी ओर दुख पाए हम लोग, छोटे लोग ! " गहरी । पर कालू तो घोरो की भाधी के बेग से उड़ चुने ? उसने कहना जारी रखा ।

री बीमारियां होती हैं और अगर इन बीमारियों है तो मासपास के लोगों को भी भरना पड़ता है । बीच में कुछ कहूँ उससे पहले ही उसने दोनों बीमार का बड़ना और बीच का बड़ना । " ? " मैं चौंका ।

कालू जोर से हंसा और कहता चलता गया । " जब है तो उसके बीच घाना शुरू हो जाती है, जैसे चीटी की होती है पर ज्यों-ज्यों उसके जय-जयकार के नारे उठनी शुरू हो जाती है और साथ-साथ में उसका त है कि मनो में तारत होती है जैसे ही इस जय-गी है, बीच उगा देनी है और उसका बड़ना शुरू ट का भी हिसाब है । जब तब यह जय-जयकार नो चींड़ें बढ़नी रहती हैं । जिसकी जोर से जय-जय-

कार होती है उसी ही तेजी से दोनों नीचे बह जाती है और एक समय ऐसा आता है जबकि उसका पेट भी बहुत बड़ जाता है। बड़ा हुआ पेट तो बड़ी हुई भूख। पेट के दिग्बाध से भूख होती है। नवीजा यह होता है कि 'माठा भोंवर' जो जो कुछ भी मिलता है, गा जाता है। पून गा जाता है। मागों-करोड़ों न्यूविक पुट घूम गा जाता है, पत्थर गा जाता है, और सरकें बेचारी टापती रह जाती है। नहरों उनके पेट में, नहरों उनके पेट में। नहरों किमानों के गतों को क्या पानी है? लोगों के दिन नुमा रह जाते हैं क्योंकि नहरें तो नह भी जाता है। गतों का घान यह गा जाता है, गाद बह गा जाता है। गाद कमी हो, देखी-बिनापती, कड़ा कर-कट, गांवर। लोग उसका पेट फूलने हुए देखाते हैं तो डरकर उसके पेट की जय बोलते हैं, पर जय-जयकार से तो उसका पेट फिर बढ़ता जाता है। सब लोगों के पेटों में पानी बोलने लगता है। ग्रामवास के नारे पेट निकुड़ने लगते हैं और चारों ओर आशंका होती है कि सारे पेट इस बड़े पेट में जाएंगे।"

"यह तो कोई विराट पेट हुआ।" मुझसे रहा न गया।

"कहते हैं कि कृष्णजी महाराज ने अर्जुन को विराट रूप दिखाया था। विराट भगवान का पेट भी इतना विराट नहीं होगा। मेरा तो यह ख्याल है कि विराट भगवान भी विराट पेट देखते तो भगवान अपने विराट स्वरूप को समेटकर एक मच्छर बनकर भों-भों करते हुए भाग सड़े होते।"

"यह तो एक बीमारी हुई।" मैं हंसा। और दूसरी बीमारी भी तो है।

"हां, वह भी कोई कम नहीं। चोंच बढ़नी शुरू होती है तो चोंच बढ़ती ही जाती है।"

"हाथी की सूंड की तरह?" मैंने बीच में छर्छा छोड़ा।

"क्या बात करते हो, बाबू साहब?" कालू के स्वर में उत्तेजना थी और उसी स्वर में कहता गया। "हाथी का सूण्ड क्या होती है? यह चोंच कोसों लम्बी होती है। जहां-जहां चोंच जाती है, वहां कोई रह नहीं सकता। इसका नतीजा यह होता है कि जगह खाली करो, दुबक रहो, चोंच का खयाल रखो, चोंच से बचकर रहो। लोग चोंच को देखकर चोंच की जय-जयकार करने लगते हैं ताकि उनकी चोंच से मुड़भेड़ न हो। परन्तु लोग, हम जैसे गरीब लोग यह नहीं समझते कि यह काम तो उलटा हो रहा है। इलाज के बजाय बीमारी बढ़ रही। जय-जयकार इलाज नहीं, बीमारी का बढ़ावा है। इस तरह ये बड़े-बड़े लोग,

हमारे बड़े-बड़े नेता लोग जब निरुसते है तो अपनी बड़े-बड़े पेटों को लिए हुए, अपनी बड़ी हुई चोंचों को लिए हुए, तो लोग डर के भारे उनकी जय-जयकार करते हैं। बड़े-बड़े पेट देखकर समझते हैं कि ये तो गणेशजी हैं। कलियुग में गणेश जी की सूढ़ चींच बन गई है। पर इन्हें क्या पता कि ये सूढ़-सुण्डाले गणेश विघ्न-हारी नहीं विघ्नकारी है। पर ये गरीब लोग बेचारे"---बहुते-बहुते कालू का स्वर मद हो गया।

"पर इसका नतीजा क्या होगा?" मैंने प्रश्न किया।

"नतीजा तो मौत ही है। ये लोग मरेंगे, ये बड़े लोग, ये नेता लोग मरेंगे तो सही, पर करोड़ों गरीबों की बेमतलब मरना पड़ेगा।"

"क्या बीमारी का इलाज नहीं है?"

"है तो सही।"

"तो फिर इलाज क्या है, बोलो?" मेरी उत्सुकता उछाले मारने लगी।

"इलाज तो है, पर महंगा, और दवाई भी कई दिन तक चलेगी, परहेज भी रखना होगा, कोई मामूली सरदर तो है नहीं जो एक पुड़िया ली और शान्त हो गया।" कालू ने कहा।

"इलाज बताओ।"

"इलाज शुरू करने से पहले यह जय-जयकार बन्द हो। जयजयकार बन्द होने से पहले रोग बढ़ना तो बन्द हो जाएगा। फिर..." कालू रुक गया।

"फिर?" मैं बोला।

"फिर इलाज शुरू करने की बात हो सकती है। इतनी बड़ी भयंकर बीमारी का इलाज भी कोई आसान नहीं। इलाज के बाद पथ्य भी आसान नहीं है।" कालू गंभीर हो जाता है।

"इलाज तो बताओ।" मेरी उत्सुकता अन्दर ही अन्दर उछलने लगी।

"बात यह है कि पेट और चोंच का इलाज एक्साय शुरू होना चाहिए। यह नहीं हो सक्ता कि पेट का इलाज अलग से शुरू हो और चोंच का अलग से हो। एक आदमी, कुछ आदमियों के साथ मे, हाथ मे संजर और बधनवा लेकर उस महाजलोदर वाले पेट पर हमला करे बिजनी की गति से, और उसकी नाभि में संजर धुसे दे। एक ही धार में। जैसे दसहरे के रोज यह धार होती है कि भैसे का चक्कर करने के लिए सनवार वह व्यक्ति ही उठाए जो एक ही मूत्रके

में उसका मिरा भड़ से बचने पर है। जैसे ही मंजरपारी के हाथ में उसकी ताकत होती चाहिए कि मंजर एक ही बार में उसकी नाभि में पूरा का पूरा घुसने जाए और बचनेवाला भी उस स्थान पर बचने में उसी स्थान पर बच करे। अगर यह सारा काम दस मिनट में हो तथा दस मिनट पर पूरी ताकत में पड़े तो फिर एक जवानपूरी फूट पड़ेगा। उसमें पेट में लावा मिलेगा। काली-पीली-पीली गैसे फूटेंगी। रामायण के मोद समझेंगे कि कोई भूकम्प आ गया। भयंकर गर्जना से निकलने वाली गैसों से ऐसा लगेगा कि किसी बमनमट्टी से आग की लपटें निकल रही हैं। यह भी संभव है कि वह उस लावा के नीचे दब कर मर जाए, वे बचनेवाले भी दब जाएं। बचने की मुरा कम है परन्तु सिर पर कपल बांधकर बचने के लिए कुछ लोग भी चाहिए। यह तो हुई एक मोर्चे की बात। दूसरे मोर्चे पर भी काम जरूरी है। यह भी एकमात्र हीना जरूरी है। दस मोर्चे पर भी कई आदमी चाहिए। वे लोग कुल्हाड़ियां, गंडाते, परसे आदि से सज्जित हों। रामायण उसकी चौंच दबाकर गड़े हो जाएं और कुल्हाड़ियों, गण्डातों तथा परसों से उसकी चौंच पर प्रहार करें ताकि उसकी चौंच के टुकड़े-टुकड़े हो जाएं। सबसे पहले उसकी चौंच का वह अग्रभाग जो सूखे की 'ईजी' की तरह तेज है, कटना चाहिए। ज्यों ही उसकी बड़ी हुई चौंच कट जाएगी, पेट फूट जाएगा, सारी गैसे निकल जाएंगी और वह...."

"वह मर जाएगा" में बोल उठा।

"नहीं, बाबू साहब। वह मरेगा नहीं। कुछ देर बाद वह होश में आएगा। चौंच भड़ जाने के बाद वह अपनी जीभ को काम में लाएगा। अभी तक तो वह चौंच ही भिड़ाता रहा था, अब वह जीभ से बोलेगा। आदमी की तरह। हमारी तरह, हमारी भाषा में। पेट भड़ जाने के बाद, वह अपने पेट की तरफ देखेगा और फिर हमारे चिपे हुए पेटों की तरफ देखेगा।"

"तुम्हारा नुस्खा है तो जोरदार, कहां से लाए कालू?" मैंने पूछा।

"लाया कहीं से नहीं, मैंने तो कथा सुनी थी।"

"कौन सी, कहां पर?"

"यहीं लोगों से। रामायण की कथा। कहते हैं कि रावण मरता नहीं था। राम ने बड़ी कोशिश की। अन्त में विभीषण ने बताया कि इसकी नाभि में दार करो वरना यह मरेगा नहीं। ऊंट पर चलते हुए, खेत में काम करते हुए, मरे हुए

जानवर की राश चीरते हुए, मुझे रामायण की यह बात याद आ जाती है तो मैं अपने ढंग से सोचने लगता हूँ और यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि कोई-सा युग क्यों न रहा हो, चाहे सतयुग हो या त्रेता, उस युग का ऊँट भी मेरे ऊँट की तरह ही रहा होगा, गारुड़ों के ही काम आता होगा, घोड़ा भी जूतता ही होगा, तागे में नहीं तो रथ में। लोग चुगलखोर भी होंगे, स्वार्थी भी होंगे, दूसरों की धोतरों पर भी बुरी नज़र रखते होंगे, मौका पड़ने पर भगाकर से जाते होंगे। देवता लोग भी ठगी करते थे।

“रावण कहते हैं कि ब्राह्मण था, पर लोगों ने उसका जय-जयकार करके उसका खोपड़ा कुत्ता दिया। फिर एक खोपड़ा से दो खोपड़े, दो से तीन और बढ़ते-बढ़ते दस खोपड़े। उसके मूल में बात बही। लोगों की जय-जयकार से उसका खोपड़ा बड़ गया होगा। वह ब्राह्मण से राक्षस बन गया जैसे भाज का नेता रक्षक में भक्षक बन जाता है। तस्कर बन जाता है।

“आजिद दस खोपड़े तीढने ही पड़े। उसकी नाभि सुखानी पड़ी। ऐसा हर युग में होता है, क्या त्रेतायुग, क्या कलियुग। खोपड़े बढ़ेंगे, चोच बढ़ेंगी। भस्मासुर तो हर युग में रहेगा। अगर उसको कड़ा दे दिया गया तो वह तो फिर सबसे सिर पर कड़ा फेरता ही रहेगा। कड़ा चाहे सोहे का हो या सत्ता का हो, अगर मिल गया तो फिर भस्मासुर कैसे रुकेगा? भस्मासुर तो उसको ही खाने की कोशिश करेगा जिसने उसको कड़ा दिया, सत्ता दी।

“जब-जब भी इस प्रकार कड़ा जिस किसीको दिया जाएगा, तो वह तो भस्मासुर हो जाएगा। कोई फर्क नहीं पड़ता, आपने कड़ा किसको दिया? —माने वाला चाहे देव हो या मानव, नेता हो या सेवक, भ्रन्त में तो भस्मासुर ही बनेगा, रावण बनेगा। राक्षसी मर्जा को प्राप्त होगा। राक्षस को मारने में, वही दिवकतें, वही एक रास्ता, नाभि से पकड़ो। परन्तु इसके लिए जिम्मेवार...”

“कौन है?” मैंने सवाल किया।

“जिम्मेवार हूँ वे सारे लोग जिन्होंने ‘जय-जयकार’ किया। कष्ट फाड़कर। यह सामने खेजड़ी की पेड़ देखते हो। खेजड़ी ही क्यों, कोई पेड़ ले लो, उसकी टाइन-टाइन पर छंगाई होनी ही चाहिए। उसकी छंगाई नहीं हुई तो इसकी बड़ा-सरी ऊकचूक हो जाएगी। इसमें कांटे ही कांटे हो जाएंगे। इसकी टहनियाँ, इसकी शाखाएँ मनमाने ढंग से बढ़ती जाएंगी। नतीजा यह होगा कि पेड़

दुगन्धेवा हो जाएगा। रोजनी को धामने नहीं देगा। चाप इसके नीचे गाट टाल-
कर सो नहीं मर्गेगे। कोई भाड़ियों गमैरु को गमने नहीं देगा। अगर इसके
नीचे कोई चीज बनयेगी तो गट होगी साप, बिज्जू, उल्लुओं के घोंसले।

"पेड़, नेता धीर देवता गमैरु की छंगाई समय-समय पर होती ही रहनी
चाहिए। पेड़ कोरे बनमहोतमय से बिगड़ जाता है, उसका स्वागत कुल्हाड़ी से
भी होना चाहिए। नेताओं का स्वागत भी कोरी फूलमालाओं से ही नहीं, जूते-
चप्पल तथा अष्टे फेंककर भी करना चाहिए। नेता धीर जनता का हित इसीमें
है। शिवजी का एक भक्त शिव की भक्ति दो जूते लगाकर करता था और
शिवजी कभी नाराज न हुए। एकाएक ऊंट ठहर गया। ऊंट को भी एड़ लगनी
चाहिए। कहते-कहते उसने ऐड़ लगाई।"

मुझे हंसी आ गई।

"लो, यह हमारा गांव आ गया। यह रहा भोमियो जी का मंदिर।" कालू
बोला।

"खेड़े के मालिक के दर्शन भी कर लिए जाएं। जब मैं इसके खेड़े में आया
हूं तो मालिक के यहां हाजिरी तो गंटानी ही चाहिए।" मैंने कहा तो कालू जोर
से हंसा।

"बिल्कुल ठीक।" उसने हंसते हुए कहा।

ऊंट बिठलाया गया। हम दोनों उतरे। मंदिर क्या था, एक छोटी-सी
छतरीनुमा मंदिर। एक चौकी पर दो पैरों के निशान थे।

"यह हैं पगलिये।" कालू ने कहा, "हम लोग इनकी 'धोक' खाते हैं।"

"क्या भोमियो जी की मूर्ति नहीं होती?" मैंने पूछा।

रामदेवजी और भोमियो जी की मूर्ति नहीं होती। केवल पैरों के निशान ही
पूजे जाते हैं। हम तो बूढ़ हैं और शूद्र लोग पैर ही पूज सकते हैं। खोपड़ियां तो
ब्राह्मणों के पास रह गईं।" कालू ने मेरे से चुटकी ली।

"यह आ गया मेरा भाई लालू। यही यहां का भोपा है। घूपदीप करता है।

मैंने हाथ जोड़े और उसने भी।

लालू ने मुझे एक भस्मी की चिऊंटी दी और मैंने भस्मी का तिलक लगा
लिया।

"पास में एक राजपूतों का घर है। पानी मंगवा दूं। हाथ मुंह-धो लो।

थकावट मिट जाएगी।”

“क्यों बाबा, तुम्हारे घर में पानी नहीं?” मैंने पूछा।

“हे तो क्यों नहीं? पर हम लोग मेघवात हैं और आप ब्राह्मण।”

“तो उससे क्या है, मैं तो पीता हूँ, मैं कोई छुमाछुत नहीं मानता हूँ।” मैंने कहा।

“यह तो हो सकता है, कभी-कभी आप गोमूत्र भी पीते हैं?” कालू ने चुटकी ली।

“नहीं, बाबा, मेरा कई बार काम पड़ा है, मैंने उनके महा साया है और लिताया है।”

“मैं कब इसे भूठ समझ रहा हूँ। आप लोग तो आठपद में कौमो को भी पूरे पन्द्रह दिन लिताते हैं, पर जेबारे कौमों की तो सद्गति नहीं हुई न, उनका काव-काव से पिण्ड छूटा और न गंदगी में।” लगेत हाथ कालू ने एक लट्ठ-सा मार दिया।

“कालू, तू आदमी तो जोरदार है।” मैंने अपने-आपको हतप्रभ मानते हुए कहा।

“मैं क्या, मेरी सात पीढ़ियों में कोई जोरदार नहीं हुआ और न मेरी आने वाली सात पीढ़ियों में कोई जोरदार होगा,” यह है मेरी भविष्यवाणी और चौदह पीढ़ी का हिसाब।” कालू ने कहा।

“तू यह सोचता होगा कि तू चमार है घल, तू व तेरी आने वाली पीढ़ी तरफकी नहीं कर सकती, अगर यह सोचता है तो सोचना गलत है।” मैंने कालू मुहावरे में बात की, “आज के युग में कोई जाति-पाति नहीं है और जन्म से कोई छोटा-बड़ा नहीं होता।”

“महाराज बात समझे नहीं, मेरे मन की।” कालू सिर हिलाने लगा।

“तो तेरा मतलब?” मैंने उसकी तरफ देखा।

“मैं चमार हूँ और महाचमार बनने के लिए तैयार, बिल्कुल राजी मन से, कभी कोई विबायत नहीं करूँगा कि लोग मुझे मे छुमाछुत बरतते हैं, पर मेरी एक बात है,” कालू ने कहा।

“वह क्या है?” मेरे मुँह से निकल गया।

“कोई पाच लाख बी सादरी लुन जाए, या कहीं दबा घन मिल जाए तो

फिर देखो।" कालू अनागत भविष्य में दृष्ट गया और मन के लड़कू गाने लगा।

"तो फिर क्या करेगा। कालू!" मैं भी एकदम लाउट मूड में आ गया।

"क्या कर्म? पहले आने, भोमियोजी की कामारूप कर्म। भोमियोजी का ऐसा मन्दिर बनाऊँ कि नपने में सारे देवता मूभो दर्शन दें और कहें कि हमारा भी ऐसा ही मन्दिर बना। फिर उन ऊँट को घी दूँ और यह ऊँट भी क्या गाय रहे, इसके लिए सोने का गहना बना दूँ। सोने का काम दिया हुआ ऊपर भूल। जब मैं इसपर चढ़कर चला तो ब्राह्मण-वनिये मुझे सलाम करें। आज न कोई जात है न पान। न कोई ब्राह्मण है न शूद्र। जाति दो ही है—एक जिसके पास पैसा है और एक जो मुफलिस है। बाबा 'रूपली पते तो रोई में चले'। पर छोड़ो इन चीजों को। यह पानी ले आया। हाथ-मुँह धोओ। अगर आपका मन माने तो थोड़ी राखड़ी िला दूँ।" कालू बोला।

"राखड़ी के लिए तो दोरशाह हिन्दुस्तान की ठूकूमत गंवाने को तैयार हो गया था। जरा मंगवा ले, घूप में ठीक रहती है।"

"इसका मतलब, दोरशाह मूर्ग था या राखड़ी समझ गया होगा।"

जब मैं राखड़ी पी रहा था तब कालू बोला कि मुझे उसका लड़का छोड़ आया। उसने क्षमा-याचना के स्वर में कहा कि उसे सेत जाना भी जरूरी है तथा कुछ कुत्तर करनी है। उसकापन्द्रह वर्षीय लड़का उसे छोड़ आया। मैंने भी हाँ कर दी।

उसने रामा-श्यामा के साथ मुझे विदा दी। 'कड़ा काठा' कुछ भी कह दिया हो, उसके लिए माफी मांगी।

ऊँट रास्ते चल पड़ा। ऊँट आगे को चल रहा था, और मेरे दिमाग में पुरानी रील पुनः चल रही थी।

ऊँट चल रहा था...गांव आ गया। मैं चौंका। घड़ी की तरफ देखा तो एक सुई गायब नज़र आई। सूरज सिर पर था। सिर के तो बाल ही नहीं दिखाई देते। मैं ऊँट से उतर आया, पर कालू अभी भी मेरे दिमाग से उतरा नहीं था।

कुछ सवाल जो मुझसे सुलझते नहीं

मेरे कोई बड़े-बड़े सवाल नहीं हैं कि पोमागोरस की प्रतिभा की आवश्यकता पड़े। छोटे-छोटे सवाल; देखने में बहुत ही सीधे। रोज़मर्रा के। सरल। पर, समाधान ! अपनी समझ तो साथ नहीं देती, माप यदि सहाम्यता करें तो स्वागत है।

जवाबत हो तो बात कह दू ?

बात घबघत की है। मैं छोटा ही था। हमारे एक गाय होती थी। बहुत दूध देती थी। परन्तु वह एक तरीके से दूध देती थी। मा दूध निकालती थी, तब मेरा काम होता था कि गाय को 'चारा' डालता रहूँ। धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा। थोड़ी-सी चूक हुई कि गाय 'बूद' जाती। मुझे डाट पड़ती।

मैंने कई बार सोचा : गाय ऐसा क्यों करती है ? अजीब-सी बात है; दिन भर खिलाओ-पिलाओ। मगर दूध निकालने के समय अगर 'चाटा' न डाला गया तो दूध 'बड़ा' लेगी। दिन-भर भूखी रखो, पर दूध निकालने के वक्त अगर चाटा चटवाते रहो तो दूध दे देगी।

गाय का यह व्यवहार मेरी समझ में नहीं आया। बहुत सिर मारा। गाय को दूध बढ़ा लेने में क्या फायदा ? दूध बनों में सूख जाएगा। उसकी दूध देने की क्षमता घट जाएगी और उसी अनुपात में उसकी उपादेयता भी। पर, गाय को कौन समझाए ? गाय कैसे समझे ?

मैंने मा से यह बात कही, पुरखोर शब्दों में।

"यह तो 'बाण' है। 'बाण' 'बुबाण' भी हो सकती है।" उसने मुझे समझाया। मेरी मा 'पाबलोव' नहीं थी और न उसे कोई कुष्ठामो का ज्ञान ही था। मेरी समझ की परिधि में कोई बात धुसी नहीं।

कम की बात है। कुछ लड़के साथ थोड़ा करने लगे कि गणतन्त्र दिवस के अवसर पर आयोजित होने वाली परेड में भाग लेने वाले लड़कों को नास्ता दिलाया जाए।

"पर उनको ही क्यों? बाकी लड़कों को क्यों नहीं? गणतन्त्र तो सबके लिए है।" मैंने कहा।

"यह लड़के परेड छोड़े ही कर रहे हैं, सर?" छात्र-नेता बोल उठा।

"तो, तुम्हारा मतलब यह हुआ कि नास्ता दो तो लड़के परेड करेंगे, नहीं तो नहीं, गणतन्त्र दिवस से क्या लेना?" मैं बात पूरी भी न कर पाया था कि एक लड़का बोल उठा: "हमेशा से ऐसा होता आया है, सर! नई बात तो है नहीं।"

मुझे गाय की बात याद आई। मां की बात याद आई। लड़कों को 'चाटा' चाहिए। 'वाण' 'कुवाण' पड़ी हुई है।

"मैं तुम्हें पच्चीस पैसे 'पर हैड' से ज्यादा नहीं दे सकता। यह रही इस मद की बजट पोलीशन," अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए मैंने कहा।

"ठीक है, सर, एक कप चाय ही पी लेंगे।" नेता लोग मान गए। मेरी समझ में बात भा गई कि इन्हें तो 'चाटा' चाहिए। ग्वानटिटी या ग्वालिट्टी से कोई सरोकार नहीं। चाय में कौन-से विटामिन व प्रोटीन होते हैं, वे समझने की कोशिश नहीं करेंगे।

विभागीय आदेश !

अध्यापकों से अपेक्षा की गई थी कि वे ग्रीष्मावकाश में या लेजर टाइम में प्रौढ़ शिक्षा में भाग लें।

अध्यापकों की मीटिंग बुलाई गई। पूरा का पूरा आदेश पढ़ा गया और आह्वान किया गया कि इच्छुक अध्यापक आगे आएँ।

"ऐसे अध्यापकों को इन सेवाओं के एवज में क्या मिलेगा?" एक जिज्ञासु महानुभाव तपाक से किन्तु तैश में पूछ बैठे।

"प्रशस्तिपत्र," मैंने वातावरण को हल्का बनाने की गरज से कहा।

"उसको चाटें क्या?" एक प्रतिक्रिया। कहां से, या किस कोने से, मैं जान न सका।

“तो फिर, कोई चाटा होना चाहिए ?” मैंने बात उछाल दी, इस गरज से कि बात ठण्डो न पड़ जाए ।

“आप जिसमहज्जे में बह रहे हैं ?” स्टॉफ सेक्रेटरी राटा हुआ । उसने कहना जारी रखा, “पर यह तो व्यायसगत बात है कि ऐसे अध्यापको के लिए कोई न कोई ‘इनसेण्टिव’ तो होना ही चाहिए । चाहे पूरी तनह्वाह पर छुट्टी का हक हो, इम्ति-हान देने की ‘परमिशन’ में प्राणमिवत्ता हो, या कोई रोकड़ी भत्ते के रूप में हो ।”

सेक्रेटरी ने स्टॉफ की ओर से मन्तव्य स्पष्ट किया । अध्यापको की मुसमुद्रा से ऐसा लगता था कि सेक्रेटरी का सामूहिक स्वर था ।

“ठीक है, ठीक है, मैं समझ गया,” मैंने स्वीकार किया और यह भी समझ गया कि सम्म भाषा में ‘चाटा’ का पर्यायवाची शब्द ‘इनसेण्टिव’ है और उसके बाबाजात भाई हैं ऐवाइं और रिबाईं भी ।

लगता है चाटा और इनसेण्टिव का मूलतः सम्बन्ध यही है जोकि कठपुतली और मिनेमा का है । ध्येय एक । सोचल दर्ज एक । मुझे अपने गवारु बैकप्राउण्ड पर नॉप उकर भाई ।

“कर्मचारियों की हड़ताल दूट गई । सरकार ने माग मान ली । मन्तरिम सहायता के बतौर कम-से-कम दस रुपये प्रति माह, पन्द्रह रुपये प्रति माह से अधिक किसीको नहीं ।” एक न्यूज ब्राइटम ।

पता नहीं पड़ा कि माध्यम पी. टी. भाई है या यू. एन. भाई । लगता है कि समाचार प्रचिह्न ही है ।

“कितनी खुशी की बात है,” मैंने अपने मन में कहा, “अब मैं एक पान और एक कप चाय और पी सकता हूँ ।”

मेरी मुड़ी क्यादा देर न टिक सकी । क्यात आया कि मूल समस्या तो तेल, मसक, लकड़ी, कपड़ा घुलाई, सामुन, सख्खी बगैरह ही है ।

समस्या एक पान और एक कप चाय की नहीं है ?

क्या हड़ताल इसीलिए की गई थी ।

हड़तालियों का मूल में क्या इतना ही सीमित लक्ष्य था ?

बात मूल में वही ‘चाटे’ की थी ।

सरकार ने जरा चाटा डाला कि हड़ताली ‘पावत’ गए ।

मुझे फिर गाय धाती है। गाय और मेरी मां !

सरकार वेतनमान मुधारने की सोनखी है। नमय-नमय पर मुधारती भी है। मान लो (यद्यपि मानने से कुछ होता-न होता नहीं) कि कल से न्यूनतम वेतन एक हजार रुपये हो जाए।

तो, फिर ?

क्या सहूल मुधार जाएंगे ?

पास पचास प्रतिशत से बढ़कर दस प्रतिशत हो जाएगा ?

क्या 'स्ट्रिक्शन' रक जावेगा ?

कोई गारण्टी दे सकता है ?

कुछ भी नहीं, मुझसे मेरी गाय वाली बात भूलती नहीं। कितना ही खिलाफो पिलाओ, अच्छा वेतन दो 'घपाकर'। पर ऐन वक्त पर 'चाटा' न डाला तो गाय तो दूध नहीं देगी। अच्छा परीक्षाफल रहा तो एक 'एडवान्स इंक्लीमेंट' दो। कोई रियायत, कोई सहूलियत तो होनी चाहिए। नामकरण कुछ भी हो, चाटा, इन्ते-ण्टिव, एनकरेजमेंट, रिवाइंड, एवाइंड मेरिट सर्टिफिकेट। जब विष्णु के हजार नाम हो सकते हैं तो इसमें किसीको क्या आपत्ति हो सकती है !

मैं घर चलता हूं। रास्ते में पनवाड़ी की दूकान। मेरा सबसे बड़ा जंकशन। मेरा वाटरिंग स्टेशन, नया 'घन लेने का स्टेशन। वैसे मैं अपनी ही स्टीम से चलता हूं।

मुझसे पूछो तो मुझे पनवाड़ी से ज्यादा कोई 'मातवर' नजर नहीं आता। पनवाड़ी से ज्यादा मुझे कोई 'मातवर' नहीं समझता। ये वजाज और ये सर्राफ !

उनमें आत्मीयता कहां ? मेरा तो यही अनुभव है। कभी भूल से सालों में कभी-कभार इनके यहां पहुंच भी गया तो उनकी निगाहों से ऐसा लगता है जैसे कि मैं कोई अच्छूत हूं और वे धर्मसंकट में फंस गए हों।

खैर पनवाड़ी की आत्मीयता ! अनुभव की चीज है।

अगर सार्वजनिक हड़ताल के दिन पनवाड़ी की दूकान बन्द नहीं होती तो मेरे हिसाब से हड़ताल भी मुकम्मिल नहीं होती !

मोहन पनवाड़ी, मेरा दोस्त !

केवल पान बेचता है। लोग खाते हैं और थूक देते हैं। परन्तु मोहन को उससे

क्या ? उसने तो मन्त्रान्तर बतला दिया है । मानदार-गा ।

मैंने उसे एक शोध कहा कि वह धरने भवन का नाम रख ले 'सूत्र भवन ।'

"सूत्र भवन !" उसने मेरी तरफ देखा सास धमकाते से । एक राग ऐंगल से ।

"ठीक ही तो है, जैसे सूत्र से बिराजता नहीं बागवत् भी, पर तेरी तो ईंटें भी सूत्र की, छोर बिराज भी गईं । तेरा मन्त्रान्तर सामूहिक सूत्र की परिणति है । देखो, बिजने लोग सूत्रों (पान साकर) और बिजने क्यादा लोग सूत्रों, तुम्हें बतला ही क्यादा पानदा होगा." मैंने एक छोटा-सा भाषण भाट दिया । "भाई लोगों की भीड़ में एक गजबन हन पड़े । हनी का पन्धरा जो सूटा कि मेरे बोट पर अमित निशान छोड़ गया ।"

"घाप क्या करते हो ? बोन-सी बाजरी बेचते हो ? कोरा सूत्र उछालते हो ।" मोहन ने नहने पर दहला मारा ।

"तुम्हें तो मास्टर होना चाहिए ।" मैंने भँव मिटाते हुए कहा ।

"हाँ, मैं तो पनबाड़ी ही ठीक हूँ । पर मेरा एक भतीजा है । बी. एम. टी. गी. पान । तीन साल से दण्डवारी में बैठा है कि मास्टरी मिले । मैं तो कहता हूँ कि पान भी दूरान कर से । परन्तु पनबाड़ी बनने में जोर आता है, बैठक चाहिए । पानीना आता है । मास्टरी में 'सूत्र-गुड़' कर भरना मंजूर है । परन्तु स्वतन्त्र काम करने की प्रवृत्ति मारी गई । मे पड़े-लिगे लोग क्या करेंगे ? मुझे तो समझ में नहीं आता," मोहन ने एक ज्ञापन-सा पत्र कर दिया ।

"तू ठीक कहता है, मोहन ।" पान को मुह में दबाते हुए मैंने कहा और चला दिया ।

मोहन ने एक बात कही ।

मेरी बात तो सिखायावनी कहने हैं ।

वही पान अगर विज्ञान भवन में कोई 'बिग-बिग' कहना तो धनधारी में मुक्तिपों के साथ छन जागा । परन्तु मोहन पान बेचता है । सिर्फ पान । इसलिए ज्ञान की बात कौनो बेछ मकना है ? लोग उसका पान साकर सूत्र देते हैं, सर उसी तरह उगकी बात गुनकर भी धनमुनी कर देते हैं । ज्ञान भी तो 'मनमोषोरादर' दूरान पर बिक नहीं सकता । नाश्तेस होना चाहिए रानद के रूप में ।

मैंने पान का पहला पीक चुना ।

"पान की दुकान क्या बंद है ?" धामने-धामने सवाल किया । धार के नारायण तो बिना पान पाए हुए कुछ बिग भी नहीं सकते । उनके लिए तो अमेरिका में पान आने हैं, हवाई जहाज में ।

फिर पटा-बिगा धामनी पनवाड़ी बन जाए तो धर्म की क्या बात है ?

पान का दुमरा पीक चुना । पान की गुर्मी तो गतम । सोचा कि पनवाड़ी की ओर चले और एक पान और जमाएं ।

एवाउट टर्न किया ।

"क्यों कहां जा रहे हो ?" एक आवाज आई । उस आवाज को मैं बहुत जानता हूँ ।

"कहीं नहीं," मैं 'गेज यू वर' हो गया । घर के दरवाजे से लौटना मेरे बस की बात नहीं थी । पान का रहा-सहा नया काफूर ।

"बड़ी देर लगा दी ।"

"कहां रहे ? यह भी कोई वक्त है ?"

"हम सब लोग तंग आए, आपसे !"

अंग्रेजी में कोई शब्द, कहावत, जुमला बगैरह बार-बार प्रयोग में आए तो वह क्लिशे (Cliche) कहलाता है । क्लिशे महादोष है पर मुझे अपने घर में क्लिशे के सिवाय कुछ सुनना ही नहीं पड़ता । वही सवाल, वही टोन । साल के बारह महीनों, चौबीस पखवाड़े, बावन हफ्ते और एक दिन । रोज की यही रट मेरी धर्मपत्नी की, कर्मपत्नी की ।

सच पूछा जाए तो धर्मपत्नी शब्द की सार्थकता समझ में नहीं आई । धर्म की बात कौन-सी है ?

आज के महंगाई के जमाने में सबसे कॉस्टली आइटम ही पत्नी है और ऊपर से ये 'इन्सीडेण्टल चार्जेंज' ।

धर्मभार, धर्मबहन की बात तो समझ में आती है । परन्तु पत्नी में धर्म कहां घुस गया । सब कर्म ही कर्मों के बंधन । वह तो सारे कर्मों की जननी है ।

खैर, हिन्दी के पण्डिताऊपन से पिण्ड नहीं छूटा । उसे 'सिक्कूलर' बनने में लगेगी ।

प्रनासकत भाव में सब कुछ देखता हूँ, सुनता हूँ। न मुझे याद है और न मेरी ओर से करियाद है।

“खाना ठण्डा हो जाएगा।”

मैं चुप।

“खाना खाना है कि नहीं?”

मैं फिर भी चुप।

“भूख है कि नहीं?”

“पहले एक चाय पिलाओ, फिर पता चलेगा कि भूख है या नहीं। फिर सोचूंगा कि खाऊ या नहीं।” मैंने मौन भंग किया।

“अजीब आदमी हो। यह भी पता नहीं कि भूख है कि नहीं, खाना खाना है कि नहीं,” वही आवाज जानी-पहचानी।

“अरे, तुम्हें कैसे समझाऊं कि ऐसी मन-स्थिति में संवत्सपीयर भी हेमलेट के माध्यम में बिल्ला पड़ा था : टु बो ऑर नॉट टु बी...”

मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी कि फिर एक और धमाका।

“खाना खाना है कि नहीं। नहीं तो चौका उड़ाया जावे।”

“मैं पहले चाय पिऊंगा,” दुकता के स्वर में मैंने कहा।

मैंने हेमलेट कॉम्प्लेक्स तोड़ दिया। डेनमार्क के राजकुमार से बाजी मार गया। यह निश्चयारमक बुद्धि का ठोस प्रदर्शन था जिसके लिए भगवान कृष्ण को अर्जुन से कितनी देर मायापच्ची करनी पड़ी थी। अर्जुन से मैं एक ही बात में काम हूँ कि अपने ही घर में व्यूहरचना को तोड़ नहीं सकता।

“महं तो कप, पच्छो की-सी ज़िद ! यह भी कोई चाय का टाइन है ?”

मैंने कुछ नहीं कहा। कोई कमेंट नहीं।

चाय की प्याली लिचकर होठों के पास आ गई।

एक सप।

गरमागरम चाय। तैरता हुआ घुमा। पता नहीं मेरे ही मुह की भाप थी या चाय की प्याली में कोई भाग थी। चाय की प्याली में सूफान गो गई बार देखा था। चाय में सबकुछ कोई करिश्मा होता है ! सुषुप्त ज्ञानेन्द्रिया जाग उठती हैं। चाय की बाष्पमय तरंगों में देखियो नहरें। सम्प्रेषण की क्षमता।

पाय की प्याली तो साईं, पर किम कीमत पर ? एक सटिफिकेट के साथ ।

बच्चों की भी पादन ! एक 'सांसारिक मूल्यांकन-मा' ।

क्या मैं अब भी बच्चा हूँ ?

यह जान तो मेरी मा करता करती थी ।

मैं रुठना था, सड़ता था, हूठ करता था, बोलता नहीं था, पर ज़िद नहीं छोड़ना था ।

मेरा हूठ, मेरी ज़िद पूरी करती थी मेरी मां ।

मां तो मर गई, पर मरी नहीं मेरी मां की 'मातृमूर्ति', मदर फिगर, मां का भूत, प्रेत, छाया । एक धदूप्य छाया । वह मातृमूर्ति प्रतिष्ठित हो गई है अन्यत्र । पत्नी में, पुत्री में ।

फिर मैं ? दिमाग में एकतरंग ।

...वही बच्चा जिसका बेबीशिल टूटता नहीं ?

वही बच्चे की आदत ; ज़िद, हूठ ।

वही 'बाण', वही कुबाण :

तो ? आदमी एक आदत बच्चा है ?

मैं तर्क के सहारे आगे बढ़ता हूँ ।

अचेतन में कोई परवर फैकता है ।

आदमी आधा बच्चा और आधा जानवर पैदा होता है । औरत का काम है कि वह उसे परिष्कृत करे और पालतू बनाए ।

आदमी आधा बच्चा पैदा होता है !

आदमी आधा जानवर पैदा होता है !

औरत का काम ? वह क्या कर सकती है ?

क्या यह सम्भव नहीं कि वह आधे बच्चे से पूरा बच्चा बना दे ?

उसे कौन-सा गणित आता है ?

यह भी सम्भव है कि वह आधे जानवर से पूरा जानवर बना दे !

तो, फिर ? बड़ी खतरनाक स्थिति आ सकती है ?

चलो, आदमी पूरा बच्चा बन गया तब तक तो गनीमत है । इतना ही तो हुआ कि आठ और साठ साल के आदमी की 'मेंटल एज' में फर्क नहीं होगा । बाल सफेद होते जाएंगे, दांत टूटते जाएंगे, चदमे के नम्बर बढ़ते जाएंगे । मगर उसका

शिशु-कवच तो बरकरार रहेगा ।

शिशु-कवच में सुरक्षा होती है !

आखिरकार, मातृसत्ता-युग में भी तो आदमी का बच्चा रहा होगा । उसकी 'रिस' का पुराना अनुभव जी उठेगा । यह अनुभव तो उसके खून में है । मम्यस्त होने में क्या देर लगेगी ?

ज्यादा से ज्यादा कुछ लोग फलिया कस लेंगे । पर इसकी गुजाइश ज्यादा नहीं है । काच के भवन में रहने वाले दूसरों पर पत्थर नहीं फेंका करने !

पर गुदा न चास्ता, आधे जानवर से पूरा जानवर बन जायें तो... ?

तो फिर क्या होगा ?

एक जानवर, एक हैवान से क्या अपेक्षाएं ? कौन-सी रस्ती में बांध सकेंगे ?

रस्सिया तो वह तोड़ देगा । सब रस्ते तरफ ।

हैवान की नजरो में तो कोई होवा ही नहीं ।

मा, बेटी, बहन, भाई, बेटा, बाप, बच्चे ! ये तो आदमी के रस्ते हैं । ऊंट की मा और बीबी दो छोड़े ही होती हैं !

वह तो किसी को नहीं छोड़ेगा !

फिर तो जगह-जगह घंगला देस, बियतनाम...

उमकी उपलब्धि की गाथाएं बयान करेंगी—

लोपड़िया ! नर ककास ! सामूहिक कर्ज ! सक्ती सार्थ ! उक्ती हुई हुष्ट-पुष्ट चीलें !

क्या पाकिस्तान में धीरतें मर गई थी ? अमरीकी मेमो का क्या हो गया था ?

क्या बड़ा ऊटनिया हो थी ?

माताएं मर गई थीं ? बीबियां नहीं थी ?

बहनें न थी ? बेटियां न थी ?

फिर ये इतने सारे मदाग्य ऊंटों का टोता कैसे तैयार हुआ ?

आदम का बच्चा इतना उलील तो नहीं हो सकता कि होवा की बेटी की हवा ही निकाल दे ?

एक सिप । पूरे खोर से । बप खाती था । मैं हवा खींचकर ही रह गया ।

पास में सड़ी मेरी सड़की हंस पड़ी । मैं बीका ।

मैं धूम-फिरकर अपने घर आ गया ।

एक लघु यात्रा

कैसे रहे अगर मैं शुरु ही में साफ-साफ नहूँ दूँ और माफ़ी भी मांग लूँ कि न तो मैं कोई बड़ा घुमनगढ़ ही हूँ और न कोई बड़ा आदमी ही हूँ जिसे इतनी दूर-दूर तक जाना पड़े जिससे वह भूगोल के विद्याभियों को जलवायु, वनस्पति, जानवर, उपज आदि के बारे में कोई निमिष्ट जानकारी दे सके। न अक्षांश और देशान्तरों का ही इतना फर्क पड़ना है कि मुझे अपनी घड़ी की सुई घाने पीछे घुमाना पड़े। कपड़े उतारने या पहनने का सवाल ही पैदा नहीं होता। मोटे तौर पर यों ही समझ लो, गुण्डी के इस पार या उन पार।

मुजानगढ़ की क्या संज्ञा हो सकती है, गांव या कस्बा। मैं अभी तय नहीं कर पाया। जनसंख्या चालीस हजार से ऊपर है। भोपड़ियाँ आवाद हैं। सेठों की खाली हवेलियों में कबूतर बड़ी तबियत से गुटरगूँ करते हैं। अगर संख्या ही सब कुछ हो तो खाली हवेलियों में रहने वाले कबूतरों की संख्या भी चालीस हजार से कम नहीं होगी।

चलो, कस्बा या गांव की बहस में नहीं पड़ूँगा। आज दिल्ली भी बावजूद लाखों-करोड़ों लट्टुओं के, दुनिया का सबसे बड़ा गांव कहा जाता है और कलकत्ता सबसे बड़ी गंदी बस्ती तो फिर इसे तो 'गांवड़ा' कहना भी गुनाह है।

आजादी के बाद क्या बढ़ा, गांव या शहर? यहां भी बहस का खतरा है और बहस से बचो अपना तो मूल मंत्र है। बीच का रास्ता ही मिश्रित अर्थव्यवस्था की तरह इस देश की जीनियस के अनुकूल है। सीधा व सुरक्षित रास्ता तो यही होगा, अगर मैं कहूँ कि न शहर बढ़ा, और न गांव। अवाच रूप से कोई चीज़ बढ़ी है तो वह है—गंदगी, भूख, बेकारी और बकवास।

मुजानगढ़ न शहर, न गांव। पीने का पानी नहीं है वहां की ज़मीन में। लोग आसमान की ओर ज्यादा देखते हैं वजाय ज़मीन के।

रेलवे स्टेशन के सामने कुछ दुकानें हैं जहां पूड़ियां व पकौड़े मिलते हैं जिनकी मुख्य विशेषता यह है कि वे बासी नहीं होते। तीन दिन पुरानी पूड़ियां भी ताज़ी ही रहती हैं। कोई नहीं कह सकता कि कड़ाई से कितने जन्म लिए हैं। द्विज से कम तो कोई होती ही नहीं। यहां की चाय भी एक विशेषता रखती है। चाय का पत्तेवर तो आसाम में रह जाता है। आसाम की उबली हुई चाय यहां फिर उबलती है और उबलती ही जाती है। एक बार, दो बार क्रम चलता ही जाता है। सब कुछ होते हुए भी चाय में उबास बाकी है, उफान बाकी है। इसके पहले 'बासी कढ़ी' में तो उफान कई बार देखा था।

मैं एक पैसेन्जर गाड़ी पकड़ता हूं, भ्रमभर के लिए। जैसे तो इतनी बड़ा जहान है, कौन किसका मुंह पकड़े, जितने मुंह उतनी ही बातें। मैं तो केवल एक बात जानता हूं कि अगर स्टीफेनसन आज खिन्दा होता और इस गाड़ी से यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होता तो उसकी आत्मा बड़ी सुखी हुई होती, केवल एक बात से कि उसका थोरिजिनल मोडल आज भी आउट ऑफ़ डेट नहीं हुआ।

गाड़ी गति पकड़ती है और मैं लिडकी के पास बैठ जाता हूँ। दोनों आलों से दो दिशाओं में देखता हूं। भन्दर भी और बाहर भी।

मुझे भी जैसे कोई उधार समझाना है, बापरूम की ओर चल देता हूं, पर बापरूम खोला तो ऐसा लगा कि इसके बाहर एक नोटिस लग जाना चाहिए था 'ममनू'। मैं जिस शंका को लेकर गया था, बैठ गई और मैं अपनी शंका, छोटी या बड़ी, साथ लेकर सीट धाया और अपनी जगह पर बैठ गया। चुपचाप।

मेरे सामने धासी सीट पर दो सज्जन बातों में मग्न हैं। बात से बात चलती है और बात-बात में बहस शुरू हो जाती है। एक लेखा-जोखा शुरू होता है आजाद हिन्दुस्तान की प्रगति का, बढ़ते हुए चरणों का। जनता, सरकार, समाज; सभी पर छीटाकरी, अनछुआ कोई नहीं रहता। "हमने क्या नहीं सीखा?" एक महाशय दलील देने लगे, "जहां गुर्द नहीं बनती वी बहा सुारसोनिक जेट बनने लगे, नया हाक़' धा गया।"

'पर बापरूम का प्रयोग तो नहीं आया,' मैंने मन ही मन कहा और लिडकी 'नो मे आकने लगा।

मेरी आलें एक पुराने साइनबोर्ड से जा टकराती हैं।

कभी दो राज्यों की सीमा यहां मिलती थी। दो राज्य थे। दो राजाओं के

अमीन । दो तरफ के कानून । एक जंगी जमीन पर जमीन का बन्दोबस्त एक जैसा न था ।

एक जैसी खेजड़ियां, भाड़ियां, भोले-भाने लोग, पर राज्म दो, राजा दो ।

एक जैसी प्रजा पर फिर भी दो, ठीक उसी तरह जैसा कि कमी होता था हिन्दू पानी, मुस्लिम पानी ।

“यह कैसे था, क्यों था ?” मैं अपने घर पर जंग हुए इतिहासकार को गुला देता हूँ । प्राणों का टिकती है नखती हुई भेड़ों पर ।

कुछ भेड़ें चरना छोड़ देती हैं और देगाने सगती हैं गाड़ी को । गाड़ी में भरी हुई भेड़-चकरियों को ।

सूखी घरती, ‘लीन’ घरती, घरती पर जैसे घास उगती ही नहीं ।

जब घरती पर घास नहीं उगती तो फिर इनकी जिल्द पर ऊन कैसे उगेगी ? घास उगती है तो ऊन उगती है । घास से ऊन उगती है । इन हजारों बनाई हुई भेड़ों का क्या होगा ?

भेड़ का फर्ज है ऊन दे, वना भेड़ भूनी जाएगी । भेड़ कतरा भी जाती है । अगर कतरने की कुछ नहीं तो काटी जाती है । भेड़ को सामना करना पड़ता है कैंची का, चाकू का । यह भी हो सकता है, भेड़ सारी की सारी ‘रोस्ट’ कर दी जाए । मुझे अखबार की बात याद आती है ‘दनादन गोलियां चली और पचास को भून दिया गया ।’ ये भी कोई भेड़ें ही होंगी । शायद ऊन नहीं उतरी होगी, मुझपर उदासी उतर आई ।

भेड़ें पीछे रह जाती हैं । मुझे ‘खेजड़ियां’ भागती हुई नजर आती हैं । मैं गिनने लगता हूँ, खेजड़ियां गिनने में दिक्कत नहीं । गाड़ी की रफतार का मुझे श्रद्धा नहीं, पर एक मिनट में तीस खेजड़ियां गिनता हूँ । आजादी के बाद इन खेजड़ियों से कोई जलवा नहीं उतरा । पर इन खेजड़ियों के गिनने से सार्थकता क्या ? नई खेजड़ियां कितनी पैदा हुईं, कौन बताये ? देश में जनसंख्या बढ़ी, इसका तो लेखा-जोखा है, पर ये खेजड़ियां किस अनुपात से बढ़ीं ! है कोई लेखा ? एक सवाल खड़ा होता है और खड़ा ही रहता है ।

जमीन खेजड़ी जनती है, औरत बच्चा जनती है । जमीन से ज्यादा औरत उर्वरा है ।

‘अगर यही क्रम जारी रहा तो आदमी को जलाने के लिए लकड़ी नहीं

मिलेगी' एक सवात मुख्य सवास में धीरे जुड़ गया। मेरे भन्दर भयंशास्त्री तिल-मिला उठा। एक गड़गड़ाहट, एक घबरा। गाड़ी को ब्रेक लगा। मैं खेजड़ी से उतर आया।

'गरमागरम चाय', 'गरमागरम चाय' की आवाज सुनते ही मेरा भयंशास्त्री तो छुप गया जैसे कोई डबल्यूटी, टीटी को देखकर। मैं चाय पीने लग गया। चाय में चेतना आई और आसों में रोशनी आई, स्टेशन का बोर्ड पढ़ा। अचेतन में जैसे कोई भरोसा न हुआ, पड़ोसी से पूछ बैठा—कौन-सा स्टेशन है ?

"डोहवाना नामी स्टेशन। इस जगह का नमक खाते हो, नमक हराम तो नहीं होना चाहिए," पड़ोसी जैसे कोई बरसने की सोच रहा था।

"पर यहां के लोगों के चेहरे पर तो नमक है ही नहीं।" मैंने भी अपनी तरफ से गेंद लौटा दी।

छुक-छुक करके गाड़ी चल दी। डिब्बे में एक नया चेहरा आया जो बिना बोले बोलता था। बड़ी-बड़ी प्यार से पासी हुई मुँहें। शायद ऐसी ही मुँहें होती होगी जिनमें नीबू ठहर जाया करता था।

'हरा हरको' बड़े भद्र से बोला। पर मैं कुछ नहीं समझा। वह शायद मेरे भ्रमजस को भाव गया। तो वह संघेड़ी में बोला।

आगिर मेरी समझ में आत आ गई कि जिसे मैं सप्ताह कहता हूँ वह उसे हप्ताह कहता है। मैं छः के बाद सात गिनता ॥ और वह हाव। सप्तापदी दोस्ती आरम्भियता में बदल गई। मेरा दोस्त मतलान पूरा चुल-मिल गया। शुरू में तो मैं एक बार चौंका जब उसने कहा कि वह तो के के है।

भारतीय फौज का जवान जो 'शक या सवात' को मिटाकर ही आर्डर देता है या लेता है, पूछ बैठा, 'जानते हो, के. के. क्या होता है ?

मुझे 'ना' कहने की नीवत ही नहीं आने दी और वह बोल उठा, "के. के. मतलब होना है कायमखानी।"

मैं मुस्करा उठा। जानी-बूझानी चीज जैसे किमी अनजाने रैपर में दे दी हो। उसने कहना जारी रखा, "के. के. सिपाही होता है, फकत सिपाही, जिसके खून में एक बात है—सड़ना बहादुरी से और बफादारी से, कुछ कीमतों के लिए, सच्चाई के लिए, बतन के लिए। इतिहास उठा सो, के. के. ने खून देने में कोई कंजूसी नहीं दिखाई और न भागकर अपना खून बचाया।"

मैंने देखा कि उसकी मूर्ति लगी हुई है। ऐसा लग रहा था कि के. के. काम
‘का गुणान्तर’ में चला था वहाँ स्थानिक प्रकृति हो रहा था। वह कुछ धीमा
हुआ और फिर पहना जारी रहा।

“के. के. हर मैदान में लड़ा और गूब गड़ा अपने दुश्मन से। हिन्दू हो या
मुस्लिम। उमूल के लिए के. के. ने के. के. लड़ा है। बिना किसी किन्तक के।”

“कमान है।” मेरे मूँट में निकल गया।

“कमान की क्या बात है?” वह गम्भीर हो गया। “कीरव-पाण्डव कोई भाई
नहीं थे क्या? लड़ाई का कोई मुद्दा होता है, जान गंवाने के लिए बहाना होना
चाहिए। इन दो लड़ाइयों में के. के. घरों में कम चूड़ियाँ नहीं चटकी।”

उसने चार मीनार सिगरेट निकाली, मुझे भी ‘प्रोफर किया, अपनी सिगरेट
मुलगाई। उसके कन्धे पर लगा हुआ पट्टीयुक्त सितारा बतला रहा था कि वह
एक नायब सूबेदार है। उसका रास बेतन व बेतन-शृंगला होती है, अंदाज
लगाया जा सकता है, पर वह मलमान एक इम्प्रेसन छोड़ गया। एक परमानेंट
इम्प्रेसन। डिगाना जंकशन आ गया। मुझे उतरना था और मलमान को आगे
जाना था। उसने बड़ी गर्मजोशी से हाथ मिलाया, फिर मिलने की आशा व्यक्त
की। मेरे मुँह से निकल गया ‘अब रिवोयर’।

गाड़ी चल दी, उसकी वे मूँछें कटोरी जैसी, उसका वह अन्दाज, वह पाक-
दिली। इन सबका नक्श मेरे दिल और दिमाग में सीमेण्ट की स्थाही से लिख
दिया गया।

नागौर ज़िले के बैल नामी होते हैं। नागौरी बैल का मुकाबला नहीं, पवन-
वेग से उड़ता है। कहते हैं कि श्रीकृष्ण जब रुक्मणि को भगाकर ले गये थे, उस
समय रथ में जुते हुए बैल नागौरी नस्ल के ही थे।

परन्तु नागौरी आदमी ! लोग चाहे जो कुछ कहें परन्तु जिस घरती ने अमर-
सिंह दिया, एक मिस्री के लड़के के नाम से ही भारतीय संसद् में तूफान आ गया,
आखिर उस घरती के बारे में यों तो नहीं कहा जाना चाहिए।

नागौरी बैल हांकने वाले चौधरी का बेटा एक बहुत बड़ा रथ हांकने में जुता
हुआ है।

खैर, डिगाना देखने से एक बात तो समझ में आ जाती है, दिये तले अंधेरा।
डिगाना जंकशन—गन्दगी का ढेर। जंगल में गन्दगी।

टीक स्टेशन के सामने भविष्यवाणी की खूबन और धमन लिए हुए सही-गली चीजें, सड़ती हुई नालियों के किनारे बहुत ही महंगी कीमत पर बिकती हैं और सरोदी जाती हैं।

पड़ोस में मकराना ताजमहल बनने के बाद कोई बन्द तो नहीं हो गया, परन्तु दिगाना में पक्के पकान कहा ? कुम्हार फूटी हाडी में खाता है।

घजमेर के लिए पहली बस सुबह चार बजे मिलती है। मैं लेटा, सोने की कोशिश करता रहा और इधर-उधर से झपकी धाती थी तो कुत्तों ने भौंक-भौंक-कर मगा दी। बाबाबा मायें सड़ती हैं, कुत्ते लड़ते हैं और फिर भौंकने में 'कोम्पी-टीशन' करने लगते हैं। इस माहौल में रात गुजार देता हूँ परन्तु मेरे कहने का मतलब कतई नहीं कि घर पर मुझे कोई इमसे अच्छा माहौल मिलता है। वक्त का लफाड़ा हो तो कहना ही चाहिए कि दो घोर दो चार होते हैं।

सुबह चार बजे दो बसें एकसाथ घजमेर के लिए रवाना होती हैं, एक जितना किराया और एक जितना समय, मगर एक कच्चे रास्ते से और एक पक्के रास्ते से। मैं पक्के रास्ते से रवाना होता हूँ।

बस के इंजन का मोड़ल कौन-से सन् का है या हो सकता है, धधध से अच्छा मिकेनिक नहीं बता सकता, मेरी तो बात ही क्या ? 'मिक' का सन् तो वायुमण्डल में व्याप्त रासायनिक प्रक्रियाओं से ही पिसा होगा। स्कूल में भूगोल के पाठ में पढ़ाया जाता था कि हवा-पानी व सूर्य की किरणों से टूट-फूट होती रहती है। इस पुराने ज्ञान से एक बान तो समझने की मिसी बनी मैं भी उन लोगों के साथ होता जिनका खूला धार्ज यह था कि सन् जान-बूझकर उड़ाया गया और साथे में माइलोमीटर भी। खैर, अपने को इन बातों से क्या लेना-देना है। मेरी निजी धारणा तो यह है कि भाग के रोले-रप्पे के युग में कानों की रोले-रप्पे से बचाओ बनी मानी के पर्दे फटने का डर रहता है।

इन बनों में कोई हजार नुक्स निकाले, यह तो मानना ही पड़ेगा कि इन बसों में धामने-सामने बैठने वाली के दिल बाहे मिलें या न मिलें पर टांग से टांग तो टकरा ही जाती है। मँट और गद्दा जरूरी नहीं, खुली सिड़किया, उछलती-गूदती मोटर चलती हैं उस पक्की सड़क पर जिसने कोलतार के दर्शन नहीं किए।

धम में बैठे हुए लोग, देखने में पूरे परम्परावादी, बड़ी साफ़, बड़ी पोशाक, औरतों की और मर्दों की, जो इस भूभाग के लोग सदियों से पहनते आए हैं।

गान्धो-भूषण, शर्मसारन की महाराष्ट्रों का इन्हें पता न हो पर वेने पूरे जाग-रूक गाव-बरादे के पूरे हिमाश्वी, गमाजवाद के पूरे समर्थक। दिल्कत तो उन्हें कम समझ होती है जब कोई पूरे हि—गमाजवाद कहां तक तो था गया है और मिलना कामना सभी थोर तय करना है ?

मैं उन लोगों की बहम मुनने में लग गया। आजारी की सबसे बड़ी देन यह है कि आज बहम सब जगह पनबी है गाड़ी में, बग में। मंसू और विधानसभाओं का डेका नहीं रहा। गौर, पल्लो-नक्को बहस मिलारों तक पहुंच गई।

“तारे तो बोट कोन दे, दिन में तारे दिता दे।” मेरा पछीसी जिरह कर रहा था।

“तो अब तो गरीबी को भागना ही पड़ेगा।” मैंने भी इस ‘चालू डिबेटिंग मन्च’ की सदस्यता के लिए आवेदन किया।

“दिगो जी, गरीबी तो भगाएगा भगवान, या भागेगी काम से, पर हमारे पास तो ‘भोट’ थे, जो हमने दे दिए और गुलकर दिए, ‘वाजन्ता डोलों,’ अब चाहे गरीबी भागे या गरीब” “दार्शनिकता के पुट के साथ मुझे जवाब मिला। अजनबी को जल्दी ही कोन अपनी ‘पांत’ में मिलाता है, मैं महसूस करने लगा।

बस की एक और तारीफ। जहां चाहे ठहर जाती है, ठहराई भी जा सकती है। कोई चार्ज या सरचार्ज नहीं देना पड़ता।

एक बाबा आ गया। हाथ में एक डिब्बा था जैसे कि अल्प वचत योजना विभाग ने उपहार में दिया हो। बाबा ने डिब्बे को खुनखुनाते हुए श्रद्धालु भक्तों के सामने पेश किया और सभी भक्तों ने श्रद्धानुसार हाथ का उत्तरदस-दस पैसे, पच्चीस पैसे। मोटर में बैठे सभी समाजवादी वोटरों ने जहां खुलकर वोट दिए, वहां बाबे को भी खुलकर तवियत से पैसे दिए। बाबे को तो मैं ही एकमात्र मनहूस नजर आया। उन्होंने मेरे सामने से डिब्बा हटाने के पहले मेरी ओर घूरकर देखा। मैं डरा भी बहुत, मन ही मन पर, चलो अच्छा हुआ, उन्होंने मुझे कोई शाप नहीं दिया।

गाड़ी एक जगह खड़ी हो गई। मुसाफिर न कोई चढ़ रहा था और न उतर। ड्राइवर सीट पर न था। मुझमें उत्सुकता जागी, बाहर देखा तो देखता हूँ “वही बाबा, पास में ड्राइवर बैठा था और पास में दो प्रोफेशनल चेलें : विलम चल रही है, शायद चरस की होगी क्योंकि ड्राइवर बड़ी तन्मयता व पूरी ताकत

के साथ खींच रहा था।

साधारण चित्रों से इतनी सरसारी कौन करता है !

समाजवादी वोटर अन्दर ही बैठे हुए थे, झाड़कर की इन्तजारी में। बड़े ही दार्शनिक भाव से। उसका काम था पैसा देना, सो दे दिए। अब उसका प्रयोग घर में हो या किसीको चना खिलाने में।

"भागलो जाओ, उसका राम जाओ।"

समाजवादी वोटर सोचता नहीं।

बस चलती है, बड़े ही रोमांटिक तरीके से। समय और गति का ब्यपन नहीं। बस की जनसंख्या बढ़ती शुरू होती है दुगुनी, तिगुनी। पूरी भाड़ाही है, अन्दर बैठो, ऊपर बैठो, जहाँ जगह मिले वहाँ बैठो। बस संध्याग्रह भर जाती है। बस में चाहे कोई हजार सामियाँ निकाले। (सामियाँ बिजने नहीं होतीं !) पर कोई हम घुटकर नहीं भर सकता। इन पीप के महीने में लिफ्टियाँ गुमी हैं, ताड़ा हवा और रोगनी बानी है। बिभीको म्यूमोनिया हो जाए, वह तो बगने की किस्मत है। बस में 'भारत माता' की मूर्ति प्रतिहिन नजर आती है।

धन्य है वह झाड़कर जो इसे खींचता है। पुराना इजन चलता है, तेल से या 'बजरंग बत्ती की ज्य' से।

हमारा कारवा पुष्कर पहुँचता है। पुष्कर तीर्थराज, सब तीर्थों का गुरु। ब्रह्मा का एकमात्र मंदिर वहाँ। उनकी स्त्री हुई अम्बेपत्नी का एक और मंदिर। पति-पत्नी के व्यक्तिगत मामलों को सार्वजनिक कर भी नहीं देना चाहिए था, परन्तु बात ही कुछ ऐसी थी कि पदों नहीं डाँता जा सकता था।

ब्रह्मा भी बहक गए। बहके भी ऐसे कि ब्रह्मा का ब्रह्म डिंग पडा। 'इह' के चक्कर में घा गए। 'इह' किमता रिटना माने ? प्रजापति का यह हाम, अपनी ही प्रजा पर पिल पड़े। इसी कारण ब्रह्मानी धात्र भी स्त्री हुई है, मूँह चेंदे हुए। पर भवनगण का काम नहीं कि वे ब्रह्मा के बारे में कुछ बहें। ब्रह्मा ब्रह्मा ही है कुराई के बाबूद भी।

ब्रह्मा के बेटे पुष्कर में बहूत हैं। पुष्कर पत्नी का 'रिग्ड'। पुष्कर में कोई धाया कि पण्डे पीछे पड़ जाते हैं। एक पत्नी चेंदे की पीछे पड़ गया थापर लगने किसी भगवान से अपना सन्धिकन देता न हो। पत्नी मुझे धनौटकर बाट कर ले गया। तादाब तो मूल गया था, पर सरकार ने 'टोडिन' लगा दी। पण्ड

लोग मल के नीचे गहाने में ही पुण्य मानने लगे ।

तीर्थंराज पुष्कर में बटती है जब धोर कर्मपाश । पुष्कर में पण्डे नपटते हैं ।
पाट पर पण्डे और तानाब में पड़िगान । किसी जमाने में अज्ञानु भक्त पण्डों से
ठरकर पड़िगान की जगण में जाने में पुण्य मानते थे ।

अब पड़िगान तो सरकार ने पम्बल में फिक्का दिए, पर पण्डे मौजूद हैं
आज भी ।

बस अजमेर पट्टनवी है अजयपाल का अजमेर, पूरबीराज का ननिहाल, जय-
चन्द का ननिहाल । छई दिन के कोपड़े का अजमेर । अकबर तीन दिन में जंठनी
पर चढ़कर आमने से अजमेर आया था । अजमेर अजमेर है ।

अजमेर शरीफ ।

शरीफ और शरीफवालों की मर्दुमशुमारी होना बाकी है ।

सिन्धियों के आने के बाद अजमेर शरीफ पहले से ज्यादा शरीफ हो गया है ।

अजमेर शरीफ ।

भीड़ अंधी होती है

एक पड़ोस-लिये काजी ने पतवा दिया 'भीड़ अंधी होती है'। आकाशवाणी के जरिये पतवे की गूँज सब के कानों में गूँज गई। मैंने भी सुना।

एक दिन मैं भी भीड़ में फँस गया तो मुझे काजी की बात याद आई। अंधे की गफ़की यही भयंकर होती है, जो भी चीज़ हाथ आ गई, बात उसकी खीर नहीं होती। पकड़ में आनी चाहिए। हाथ हो या टांग हो। मैं भीड़ से चकराने लग गया। पर भीड़ में जो फँस गया तो उसे भीड़ में ही रहना चाहिए। भीड़ के झंझड़ भागना नहीं चाहिए। भागने वाले को भीड़ मार देती है।

भीड़ के झंझड़ से ही मैं भीड़ को देखने लगा। मुझे दिखाई दिया तांगे वाले, रिश्ते वाले, साहबिले वाले, ठेके वाले, सोमचे वाले, चाट बेगने वाले, तैली, तपोषी, हम्मास, हज्जाम। ये सब मिलते हैं तो भीड़ बन जाती है।

मुझे काजी जी का पतवा याद आता है, काजी जी याद आते हैं। काजी जी दुबले-पतले, धरने वाले। काजी जी ने क्या सोचकर पतवा दिया होगा? मैं भीड़ के साम बलता भी जाता हूँ और सोचता भी। क्या काजी भी मरता हो सकते हैं, मैं सोचने लगता हूँ। 'अगर भीड़ अंधी होती है तो तांगे वाले भी अंधे होने चाहिए। ये लोग फिर घर कैसे पहुँच सकते हैं? हर तांगे वाला अपने छोटे बच्चे के साथ शाम को घर पहुँचता है, हाड़ी-सामान, बाबजूद मइरा पर बने हुए गहनों के लपेटा खुले हुए गटरों के। मगरपाकिरा की मेहरबानियों का मुसफ़ान ये गहरे और गटर करते हैं। वह अंधा लगे वाला कभी इन गटरों में नहीं गिरता। गंदे हथके पहुँचना तो धाड़ मुमकिन नहीं, पर सब तांगे और छोटे के लुने हुए 'मैन होमो' में तो घुस ही सकता है। पर ऐसा होना नहीं। सभी लोग अपने रैन बनेरों में पहुँच जाते हैं। फिर ये अंधे कैसे? अगर ये अंधे नहीं तो भीड़ अंधी कैसे?

काजी जी ने क्या सोचकर पतवा दिया था? मैं सोचने की प्रक्रिया खराब तरह कर देता हूँ। मेरा दिमाग़ हाँकने लग जाता है और हथकड़ियाँ मड़न दे।

मकाने का गहरा सा मुँहासा है, एक दही-बट्टे वाले के सोमने के पास गड़ा हो बना है। एक बोट दही-बट्टे का आदर देता है। सोमने के आसपास एक कू। मगर का साहस देगहर लौटता नहीं। हो जाता है कि दही-बट्टे बेचने वाले के मर्दा पर दही-बट्टे का फर्क नहीं होता। मर्दा साहस एक जैसे होते हैं। लोग अपनी जूटन की पेटों में एक साल्टी में यह देखें। पैसे लिए और चल देते हैं।

"बाबू साहब, शामने मेरे दो मित्रों को मराब है," गोमने वाला अपने एक ग्राहक से बोला, "दूगने दीजिए।"

"नहीं तो," ग्राहक बोला।

"नहीं कैसे? मैंने कोई चरमा भीड़ ही लगा रखा है। मुझे दिखाई देता है, वहाँ तो इस भीड़ में जो मिर्ची में दही-बट्टों में जानता हूँ, कब का कोई मेरी आँखों में ही टाल जाता," उसने मेरे दही-बट्टों पर मिर्ची बुरावते हुए कहा।

मैंने उसकी आँखों में देखा, अपना चरमा भी हाथ लगाकर देखा।

"माफ करना, मैं आपको नहीं कह रहा हूँ," उसने किसी ग्राहक को लौटाने के लिए छीनर गिनते हुए कहा।

"ले भइया, अपने पैसे और डालता जा मिर्ची दही-बट्टों पर भी, और अंधी भीड़ पर भी," मैंने एक रुपये का नोट बढ़ाते हुए कहा।

"भीड़ की आँखों में मिर्ची पाउडर क्यों? इस महंगे भाव की फिर तो, धूल ही डाली जानी चाहिए। पर यह भीड़ अंधी नहीं है बाबू साहब," वह जोर से हँसा और फिर कहना जारी रखा, "अगर यह भीड़ अंधी होती तो यह ठेले वाले अपने ठेले भिड़ा देते, रिक्शे वाले रिक्शे टकरा देते, भीड़ अपनी राह चल रही है, भीड़ अंधी नहीं है और न किसीसे मिर्च डलवाती है, परन्तु यह भीड़ बेवस जरूर हो जाती है जब कोई हवाई जहाज से मिर्ची का पाउडर छिड़कवा दे, चलती सड़क पर विजली का करण्ट लगवा दे, उस समय बेचारी भीड़ क्या करे सिवाय आँख मलने के। इसी बीच जब इसकी जेब कट जाती है तो भीड़ चिल्लाती है, 'चोर, चोर'।"

"सारी भीड़ की एकसाथ जेब कैसे कट जाती है?" मैं पूछ बैठा।

"यह सीधी-सी बात भी आप नहीं समझे! यह ऐसे कि रात चीनी का भाव था पांच रुपये किलो और दुकानें खुलीं तो हो गया छह रुपये किलो। यह जेब किसकी कटी? भीड़ की ही कटी। भीड़ रोती है, चिल्लाती है, चोर चोर। चोर को पकड़ो, तो प्रत्युत्तर में ऐलान होता है—'भीड़ अंधी है, इसे गोलियाँ खिला-

कर धूप करो," गोतिरिया साकर वह सो जाती है, पीता-चिल्लाता बंद । कुछ घने बाद फिर तागे चलने लगते हैं, ठंठे चलने लगते हैं," उसने अपनी अगुतिरिया पानी में डुबाई और कंधे पर रसे कपड़े से पोछ लिया ।

"फिर ?" मैंने उत्सुकता जाहिर की ।

"मुझे शक इन आदमियों को सलटाने दो, वर्ना सोमचा ठंडा हो जाएगा । आपने तो मुझे नेता समझ लिया, जो कि बातें बेचता है । मैं दही-बड़े बेचता हूँ, माफ करना, बाबू साहब, आपके वैसे घा गए," कहते हुए उसने दोनों हाथ जोड़ लिए, "आपके पास काफी टाइम दिखाई देना है, किसी नेता के पास जाइए ।"

मेरी दिमागी घुटन खतम । मुझे लगा कि दही-बड़े वाला दही-बड़े के मतवाला कोई अच्छी चीज बेच रहा है । मगर उसकी जर्बों नहीं होती । न धावाधवाणी पर, न मलबारी में । मैं काजी जी बान्नी बात पर सोचने लगता हूँ ।

काजी जी के फतवे का क्या अर्थ हुआ ?

काजी जी दुपते क्यों हैं, समझ में आता है । गहर का अदेवा है ।

मगर काजी जी ने यह फतवा क्यों दिया ?

क्या फतवा किसी मजबूरी या सामथ में दिया गया है ? क्या कोई कुछ यह सकता है ? पर एक बात जरूर है । काजी जी बदमा क्यों लगते हैं ?

क्या वे बिना बदमे के अपने पैरों के घासपास की चीजें भी नहीं देन सकते ? काजी जी भये मासूम देखे हैं । उन्हें बिना बदमे के कुछ नहीं दिखाई देता । जब तो उन्हें फतवे देने का काम बंद कर देना चाहिए । भये को दुनिया ही घंघी दिवाई देती है । काजी जी घंघे तो भीड़ ही घंघी ।

परमेश्वर की बात तो यह है कि फतवे देते हैं वे, जिन्हें दिखाई नहीं देता, जो हर तीसरे महीने अपने बदमे के नम्बर और रंग बदलते हैं । दोपहर के समय सद्दूजमाफर रहते हैं । फतवे देते हैं वे, जो डार्क रूम में ही फोटो खींचते हैं, फोटो खींचते हैं, रिट्रिबल करते हैं, फोटोमैकिंग ट्रिक करते हैं एक फोटो की पड़ पर किसी घट या गिर दासपनाट कर देते हैं । वे ही लाग डार्क रूम से ही ऐलान करते रहते हैं कि भीड़ घंघी होती है ।

इस बार मगर काजी जी दिन गए तो उन्हें पछीदवर दही-बड़े बाने के पास में आक्रां कि अपना फतवा जरा हमरी मुना और समझा, नहीं तो हमरी बात सुन और समझ । साक्षर भीड़ में तो यह रहता है । मगर वह नहीं मानेगा तो बदमा उतरवा मुना और कहेंगे कि काजियों की जरूरत नहीं है गहर के, माफ जा ।

बेगाराम की चिट्ठी प्रोफेसर के नाम

रूपनाथ की दागी
गोगा नवमी

प्रिय प्रोफेसर साहब,

आपकी चिट्ठी मिली। पढ़कर बड़ी मुन्नी हुई। तबियत हुई कि आपको डेर सारे घन्यवाद दे डालूँ। घन्यवाद देना वैसे कभी परम्परा का निर्वाह ही रहा होगा परन्तु आज की तारीख में सही हकीकत है। आप ही बताइए इस कमरतोड़ महंगाई के जमाने में कोई किसीको नाग्रा चाहे तो भी क्या दे सकता है सिवाय घन्यवाद के। बहुत करे तो अपना 'पोत'।

मैं आपको चिट्ठी का जवाब उसी वक्त देना चाहता था। भाव तो मेरे दिल में बहुत थे, परन्तु भाषा न थी। दिल की बात कागज पर कैसे उतारूँ, मेरी सबसे बड़ी दिक्कत थी। भावों को रखने का कोई पात्र या माध्यम तो होना ही चाहिए, परन्तु ऐसी कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी कि बात का ढब बैठ जाए। इस आड़े वक्त में भगवान ने मेरी बात सुन ली। मुझे एक मनचाहा आदमी मिल गया। सुनते हैं कि शहर में इस प्रकार की दिक्कत होती नहीं। पढ़ा-लिखा आदमी किराये पर मिल जाता है। देखा जाए तो शहर की तो बात ही नहीं करनी चाहिए; वहाँ पर तो हर चीज किराये पर मिल जाती है। रोजे के लिए लोग किराये पर मिलते हैं तो गीत गाने के लिए भी पैसा चाहिए। पैसा है तो मजमा लगवा लो, हंगामा करवा लो, अभिनंदन करवा लो। पर गांव में ऐसी सहूलियतें कहाँ? इसी बात में ही तो गांव शहर से पिछड़े हुए हैं।

खैर, किसी अच्छे ग्रह का अन्तर या प्रत्यन्तर ही समझिए कि मुझे एक व्यक्ति मिल गया जो मेरे साथ लिखारा (लेखक, लिपिक) बनकर कार्य करेगा। जब एक लंगड़ा और एक अन्धा मिल-जुलकर कार्य कर सकते हैं तो हमें क्या दिक्कत

हो सकती है। मैं बोलूंगा और वह लिखेगा। भाव मेरे और भाषा उसकी।

शहर के बारे में तो अजीब-अजीब बातें हैं। सुनते हैं कि शहर में किसी चीज को जरूरत होती है तो अक्सर बार में छपवा देते हैं। अक्सर बार में छपवा दो कि प्रिंटेडो पड़ा हुआ, या भरबी पड़ा हुआ व्यक्ति चाहिए, भाषण लिखने वाला व्यक्ति चाहिए, फिर देखो, 'लेण की लेण' लग जाती है। तबियत मुताबिक छांट लो। स्टेनो, सेक्रेटरी। फिर तबियत से भाषण झाड़ो, लेस छपवाओ। आपकी असलियत कभी सुनेगी भी नहीं। एम. ए. पास व्यक्ति पीकदान उठाने को मिल सकते हैं। शहर में तो मजे ही मजे हैं, बस धातें इतनी-सी कि गाठ को अकल हो और जेब में पैसे।

गांव के धादमी का रोग या उसकी विशेषता यह है कि वह सपाट होता है। अभिनय करता नहीं आता। जो बात दिल में है, वही जवान पर, वही चेहरे पर। अगर नाराज है तो नाराजगी छूपा नहीं सकता। वह हर स्थिति में जीता है। हर स्थिति में अपने-आपको चोतता है जबकि बाहरी धादमी ऐसी स्थितियों में केवल भाग अभिनय करता है। हाल ही में, मैंने साझा-साझा सिनेमा देखा। पर्दे पर एक भूमिका देखी, भिलारी की। हू-बहू भिलारी जैसा। लोगो ने दाद दी। कहते हैं कि उस धादमी को इनाम मिला है, मेरे पास में बैठे हुए दो सड़के बात कर रहे थे। परन्तु बाहर आकर सड़क पर एक भिलारी देखा। सोनहू भाने भिलारी, जो भिलारी का जीवन जी रहा था, परन्तु कोई एक पैसा भी भिल में नहीं दे रहा था। मैं सोचने लगा "भिलारी का अभिनय करे तो इनाम, खासा अच्छा इनाम, अगर जो जीवन जिए उसको एक पैसा भी मोक्ष में न मिले, बड़ी ही विचित्र बात है।" मुझे बाहरी और देहाती जीवन का फर्क समझ में आ गया। एक बाहरी व्यक्ति किसी अजनबी से मिलकर अभिवादन के बाद कहेगा—“आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई,” परन्तु अगर कोई पूछ ले कि सुखी किस बात की, तो उसका जवाब होगा, “यह तो यो ही होता है और वह यो ही होता आया है।” पर एक देहाती ऐसा नहीं कर सकता। उसको न तो अभिनय करना आता है और न बाहरी मान्य-ताओं के साथ दोहरी जिन्दगी जीना। वह तो सीधा और सपाट है, छूपाने को तो कुछ है और न उसकी क्या। एक जैसा, ऊपर से भी और धरर से भी।

शायद यही वजह रही होगी कि नगर का रहने वाला नागर कहलाया और गांव वाला गवार। नागर का भाग अक्सर भ्रम हो गया चतुर, समाना, और गवार का भ्रम हो गया फूहड़, जिसे बात बनानी नहीं आती, बात में बतरस

सोचना नहीं था। नागर लोग ही नहीं माने में नागरिक हैं और नागरिक के को नाम निगड़ी हुई है नागरिकता।

उस दिन आपने इस बात पर मुसकरा कर खन रुई ली। बाद में अकेले में सारी बात की जुगादी की तो एक नाम घटक गई और नहीं उतरी।

नगर के लोग ही मरुतः नागरिक हैं। नागरिक शब्द आज नाहें रुढ़ित हो गया हो परन्तु जिस समय इस शब्द का प्रचलन हुआ, उस समय नगर के लोगों की ही सब गुण बन-नी होगी। आगिर पड़े-निको से ये ही लोग और इसी वजह से नगर को ही केन्द्र बिन्दु मानकर ही नामाकरण दिया होगा। गांव की याद कोई 'से' न थी। यह भी सम्भव है कि उन्हें मत का अधिकार भी न रहा हो।

आज जब हम हिन्दुस्तान के नागरिकों की बात करते हैं तो अचेतन में कोई भ्रष्ट व्यक्ति पृष्ठने लगता है।

क्या सारा हिन्दुस्तान कोई एक बहुत बड़ा नगर या नगरों का समूह है जो आप नागरिकों की बात करते हैं? आठ लाख गांव हैं इस देश में, करोड़ों लोग वहां रहते हैं। क्या सम्बोधन के लिए आपकी भाषा में नागरिक के अलावा और कोई शब्द नहीं था। बात केवल शब्द की नहीं, मनोवृत्ति की है। आप देखिए विभाजन के बाद इस देश में लाखों लोग आए, हम उन्हें शरणार्थी कहने लगे, परन्तु शब्द की गन्ध सरकार और जनता को अग्रसरने लगी और उन्होंने सम्बोधन के लिए क्या शब्द चुना—विस्थापित। सब ने कहा—यह ठीक है और अंग्रेजी में भी उन्हें 'रिफ्यूजी' के बजाय दूसरे नाम से पुकारने लगे। यह तो हमारे सामने हुआ। इसी प्रकार नागरिक में नगर की गन्ध आती है, पर बोले कौन? नगर को आपत्ति नहीं, गांव समझा नहीं। उनमें इतनी समझ कहां कि उन्हें नागरिक शब्द में गांव की उपेक्षा नगर आये। ध्वनि तो यह भी निकलती है कि गांव वाले घटिया स्तर के लोग हैं।

आपने उस समय यह तर्क दिया था कि बराबर मत का अधिकार मेरी शंका को निर्मूल कर देता है। पर इससे आगे न तो बात चलती है और न तर्क। मान लीजिए कि कल गाय, भैंस बगैरह को भी मताधिकार दे दिया जाए और उनके खुर के निशान लगाकर वोट डालने का कानून बन जाए तो? आज तो हम चुनावों में 'सिम्बल' के रूप में गाय, घोड़ा, ऊंट बगैरह को याद करते हैं। मैंने चुनावों के दिनों देखा है। लोग नारा लगाते हैं, "हाथी सबका साथी। हाथी को वोट दो,

घोड़े को घोट दो।" कोई कहता है कि घोड़ा जीतेगा उधर ऊंट के हृमदई उनकी जीत के नारे लगाते हैं। जब हम घोड़े को घोट देते हैं, गाय को घोट देते हैं तो फिर घोड़ा घोट क्यों न दे ? ऊंट घोट क्यों न दे ? ऊंट चुनाव लड़ सकता है तो ऊंट को घोट का अधिकार क्यों न हो। चायद दुनिया के सबसे बड़े प्रजातन्त्र देश में ही इस प्रकार के कान्तिकारी कदम की पहल हो सकती है। इस धनोन्नी मूर्ख के लिए, सारी दुनिया इस देश का लोहा मानने लगे। मान लो, यह सब कुछ सम्भव हो जाए तो क्या हम मान लें कि गाय, भैंस, ऊंट को पूर्ण अधिकार मिल गए ? अगर नहीं, तो फिर करोड़ों अंगूठाछाप लोगों के बारे में क्या कहेंगे जो पाच साल में एक बार गाय, भैंस, ऊंट को ही 'वोट' देते हैं, आदमी को नहीं।"

प्रोफेसर साहब, अपनी जाय उचाहने से अपने को ही घमं खाती है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि पाच साल में एक बार किसी गाय, भैंस, ऊंट, घोड़े की पूछ पर टप्पा लगाने वाले इन करोड़ों अंगूठाछाप लोगों ने कभी यह क्यों नहीं सोचा— "क्या हिन्दुस्तान एक नगर है जो हम इसके नागरिक हुए। क्या और शब्द नहीं था जिससे इन देश के निवासियों को सम्बोधित किया जा सकता था ? बात शब्द की नहीं है, बात है मनोवृत्ति की। बात है नागरिकों के सोचने के तरीके की।

सुनते हैं कि आज स्कूलों में नागरिकता की शिक्षा दी जाती है, पर नागरिकता में क्या सिखाते होंगे सिवाय इसके कि नागरिक व्यक्ति इस प्रकार बैठता है, इस प्रकार चलता है। उसके सोचने का तरीका ऐसा होता है। ये सारी चीजें मिल-कर नागरिकता बन जाती हैं। आप लोगों ने उसे सामाजिक भावना दे दी। उधर गांव के लोग सरुआ में जाहे बसादा ही रहे हों, पर उनकी चली नहीं। उनकी जीवन-मन्यति, रीत-रिवाज बगैरह गवारू ही रहे। मोटे-सोर पर, इतिहास के दौर में दयदया रहा शहर का और गांव घिसटते रहे पीछे-पीछे। व्यवस्थाएं दी नागरिकों ने, गवारों ने उसे 'सिर मरवे' रखा। आज तक का इतिहास उठा लो। आप लोगों के ही नियम। नियामक व निर्णायक रहे आप लोग। आप ही बनील। आपने ही साहित्य रचा, कानून बनाए। नागरिकों की स्तुत्य प्रस्तुत किया और हमें उपहास के पात्र। हमारी कीमत पर हसे। पर गजे की बात तो यह कि हम अपने ही मझाक पर हंसते रहे यदि कभी-कभार हमारी महानुभूति में दो शब्द लिख दिए या कह दिए तो हम सहेदिल से शुक्रिया करते रहे। हमने कभी विरोध नहीं किया और न किसी प्रकार का 'प्रोटेस्ट मार्च'।

यह सापने मनाव है, प्रोत्तेज ग्राहक । यात्रा शुरू तो गंवार लोगों के भेजे में यह बात नहीं आई कि उनके मान टूटी होनी रही है, परन्तु जिस दिन यह बात समझ का गई, तब क्या होगा ? जिस दिन भी यह बात अच्छी तरह से समझ में आ गई तो गारे भगवें भूमा दिग् जागेंगे और नया भगवा शुरू होगा ।

गांव बनाम शहर, गंवार बनाम नागर ।

ज्यों ही भगवा शुरू हुआ, दो 'पाने' तैयार । हम सनकार देकर कहेंगे कि तो आप कबड्डी—मीची कबड्डी, दो बगों के बीच ।

आप सोच लो, कबड्डी में गांव किसका टूटेगा ? नागर कबड्डी के लिए तैयार नहीं हुआ तो हम शहर का घेरा खान देंगे । गांव और शहर के बीच पहिले ही शेर में गार्ड नहीं तो कम में कम बाढ़ तो जरूर गढ़ी कर देंगे । गांव में शहर का कोई पिछलग्ग होगा तो उसही बाढ़ के उस पार फेंक देंगे । गांव और शहर के बीच हुक्का-पानी बंद । न किसी प्रकार का लेन-देन न किसी तरह का सम्पर्क । फिर देगना है इन नागरों को, इन शहरों को । हम लौग तो जी लेंगे । गांव तो भूता-प्यामा, आधा नंगा रहकर भी जी लेगा, परन्तु शहर मर जाएगा । शहर को मरते देर भी नहीं लगेगी । आपने महसूस किया या नहीं, एक बात और है । शहर मूलतः एक चारु जानवर है जो चरना ही जानता है, खूब खाता है और खाता ही जाता है । सब कुछ खा जाता है—चीनी, दूध, कपड़ा, बिजली । और हमारे लिए कुछ नहीं छोड़ता । हमारा कोटा कट जाता है ।

शहर एक 'कन्ज्यूमिंग सोसाइटी' होने के साथ-साथ अपने स्वार्थ के सिवाय कुछ सोचता नहीं । उसकी मांगें सदैव यही रहती हैं कि अच्छी-अच्छी सड़कें वहां हों, दिन में बिजली के लट्टू जलें । अच्छे-अच्छे कालेज हों, अस्पताल हों, नवीन-तम मुख, सुविधा हों, यहां तक भी ठीक है । पर ये सब चीजें गांव की कीमत पर हों, कैसे गवारा हो सकता है ? गांव उजड़े और शहर जिंदा रहे, वर्दास्त करने लायक चीज नहीं है । कोई बताये तो सही, शहर क्या होता है सिवाय बीमारियों, गोनोरिया, घुआं, घुटन और अशुद्ध वायु के ।

नागर वर्ग हकीकत में एक 'खाऊ पीर' समाज है । हमने भूले रहकर इस वर्ग को खिलाया, पर इसके एवज में हमें क्या मिला, यह बात हम जानते हैं । एक बोझ । गोरे आदमी का बोझ काला आदमी ढोता रहा और नागर का बोझ एक गंवार । पर अब हम यह मलबा और अधिक नहीं ढो सकते । पानी सिर के

ऊपर से बहने लग गया है। वे 'एसीट' (नागर) बने रहे और हम गंवार। आप उस स्थिति का भंडाड़ा लगाइए: कानून बनाए न, नियामक और निर्णायक वे, प्रपीत करें तो उनमें ही। हमारा फर्ज तो यही रहा कि हम उनका आदेश मानते रहें, वे कहें जहां भगूठा लगा दें। जैसा हुक्म हुआ, हाथ खड़े कर दिए, सिर हिला दिया, 'हां' कह दी, 'ना' कह दी। इसतरा हुआ तालिया बजा दी। इस तरह से शहर के ज़रे-शाये गांव जिया, एक जलासत की ज़िन्दगी। शहर सुरमा की तरह बड़ते रहे और गांव उगका उपनगर बनने में ही अपना अहोभाग्य समझता रहा। इसके लिए कुर्बानी दो अपनी स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र सत्ता की। शहर बढ़ता रहा, गांव सिक्करता रहा।

प्रोफेसर साहब, भव हकीकत बेनकाब है। भव यह स्थिति न तो सहा है और न उसूलन सह्यी जानी चाहिए। फोडा नश्वर मगता है नश्वर तो लगना ही चाहिए। शरीर को नश्वर मजूर नहीं। 'डेड सेस' शरीर में पड़ते नहीं। नये 'प्रेम्यूल' बनने ही चाहिए।

मेरी शका अब पक्की हो गई है कि पढ़ा-लिखा वर्ग सच्चे मानी में पुस्तनी पढ़ा-लिखा वर्ग माने में ईमानदार नहीं है। वह कतई नहीं चाहता कि कोई नया वर्ग पढ़ जाए क्योंकि वह एक जगह आसन जमाकर बैठा हुआ है और वह वहां से हटना नहीं चाहता। आज पढ़े-लिखे लोग कौन हैं? वे ही मुसीबतदा लोग, जिनके बाप-दादे अंग्रेजों, मुगलों, मराठों वगैरह के जमानों में कलम चिखते रहे, कभी भरबी में, फारसी में, अंग्रेजी में। सी मेरा कहने का मतलब है कि यह पढ़ा-लिखा वर्ग पीढ़ी दरपीढ़ी से चले आ रहे अंग्रेजों को तथा उनकी सत्तान को पढ़ाना-लिखाना तो दूर, उगदी लंगड़ी मार देगा। यह बात आज की नहीं है, युगों से चली आ रही है। किसी भी युग में विद्या को सीधा व सदा सरल नहीं होने दिया बल्कि उसे 'अन्तर-मन्तर' बना दिया। सीधी-सादी बात को धुमावदार व पेचदार बनाया गया। इसे पढ़े-लिखे लोगो की साजिश ही कहना चाहिए कि जगह-जगह पढ़ाई में पेच डाल दिया गया। दोनों कुछ, लिखो कुछ। मुरते हैं कि अंग्रेजी में हिज्जे और उच्चारण में बढ़ी गड़बड़ है। आनिरमह एक साजिश है जो हर पढ़ा-लिखा आदमी करता है और करता आया है। कहते हैं कि डाक्टर लोग अपने मुल्तों में पानी जैसी चीज को भी अपनी सानैतिक भाषा में लिखेंगे। आप ही बताइए यह एक 'ट्रिक' नहीं तो क्या है?

आप लोग बहुत ही महानुभूति दर्शन करने रहते हैं मांग के प्रति। देखते-सातों की समझ है कि आपने बंदर कोई समझ नहीं है हमारा, हम जहाँ हैं। समझ, बात की सीधा सीधा बात या कुंठित बात को माफ़ नजर पाने लगता है कि आप लोग हमें कोरा 'लोका' (दफ़्तार) गिराते हैं। मागी महानुभूति स्वयं लगती है। भूमा रोटी में भागती है न कि रोटी की बात में। क्या आपने सुना होगा कि हमें महानुभूति नहीं चाहिए, हमें चाहिए मागी-सारी, गिरफ्तार। हम की योजनाओं में, राज में, मान में, भागी कार्यक्रम में। हमारा हाथ हो, जनतमान व्यवस्थाओं में जो हम देश में लागू हो, तमाम योजनाओं और प्रायोजनाओं में हमारी पूछ हो जो हम देश के लोगों के लिए बनी है या बनाई जा रही है। हम भागीदार हों। तमाशवीन बनकर न रहेंगे और न ऐसी स्थिति बर्दाश्त करेंगे। परन्तु क्या नागर वर्ग नहीं माने में संवारों को अपने समकक्ष लाने के लिए मान-सिक रूप से, पूरी ईमानदारी से, ऐसा सोचता है? आपके उत्तर का तो मैं अनुमान नहीं लगा सकता, पर अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि गड़बड़ी यहीं है। शाब्दिक महानुभूति मौजूद है, पर इसके आगे उनकी मंशा नहीं। ईशा अल्लाह कुछ होता नहीं।

मैं हाल ही की एक ताज़ा बात सुनाता हूँ। कई दिन पहले हमारे यहाँ एक शिविर लगा। शिविर लगाने के पीछे इरादा था कि एक गोण्डी हो जाए। संविधान में दिए गए मूल अधिकारों तथा निर्देशक तत्त्वों पर खुलकर बात हो। बात शुरू हुई। चर्चा होने लगी। बात वाँसों ऊँची उछलने लगी। दुनिया-भर के देशों के संविधानों की बातें। बिना टांग-पूँछ की बातें। आसमान-पाताल एक हो गए। हम लोग उनका मुँह देखने लगे और ताकते रहे कि कोई काम की बातें कहे। शिविर कोई थूक उछलाने के लिए तो हुआ ही नहीं। आखिर हमसे रहा न गया और हममें से जेसाराम पूछ बैठ—

हमें इस देश के संविधान की बात बताओ, दुनिया बहुत बड़ी है। इसमें भी मोटी-मोटी बातें जिन्हें हम अंगुलियों के 'फोरों' पर रख सकें, गिन सकें एक, दो, तीन...। बात इतनी सी थी परन्तु वक्ता महोदय चुप, जैसे कि चलते हुए को लंगड़ी लगा दी हो। फिर कुछ देर बाद हकलाते हुए कहने लगे, "तुम संविधान की बारी-कियाँ नहीं समझते, तुम बात सुनो। अगर तुम्हारी समझ में न आए तो चुप रहो, बेकार बोलने से वक्ता के काम में रुकावट पड़ती है।" पास में बैठी हुई विद्वत्

मंडली ने भी सिरं हिलाकर बात की तार्किक कर दी। खैर, कई कारण और भी हो सकते हैं, परन्तु विद्वानों की मण्डली एक पूर्वग्रह से ग्रसित दिखाई पड़ी। उनके हाव-भावों से, मुखमुद्रामों से साफ़ झलकता था कि देहाती भी एकतरह की भेद-व्यक्रिया हैं जिन्हें मिमियाने के सिवाय कुछ नहीं आता। भेद-व्यक्रिया फिर सविधान की बरीकियाँ कैसे समझ सकती हैं? मुझे ज्वत्ता महोदय पर दया आई और गुस्सा भी। दया तो इस बात पर कि यह पढ़ा-लिखा आदमी बिना कागज बोल नहीं सकता एक छन्द भी, और ऊपर से यह हेरुड़ी। गुस्सा इस बात पर कि इस प्रकार के पढ़े-लिखे मूखों के हाथ में देश की बागडोर दे दी गई तो भगवान ही इस देश का मालिक।

अध्यक्ष ने बात का मुह मोड़ने के लिए एक नया सवाल फेंका—

“आप ही बताइए आप इन चर्चाओं से क्या समझें?”

जैसाराम तो बैठ गया। मुझे खडा होना पड़ा। मैंने निवेदन किया कि यह सविधान हमारी नई रामायण या गीता है। पुराने जमाने में लोग रामायण या गीता की शपथ खाकर बात बहते थे और आज हमारे विधायक व सांसद इसके हाथ लगाकर हलफ उठाते हैं। परन्तु इस जमाने-सा है। गीता भगवान ने बनाई और सविधान बनाया इस देश के लोगों ने। भगवान की बनाई हुई चीज में तर्मीम नहीं होती परन्तु आदमी की बनाई हुई चीज में तर्मीम भी हो सकती है और तामीर भी। शर्त यह इतनी-सी है कि इस देश के लोगों द्वारा इस देश के लोगों के लिए बनाया गया दस्तूर ही उसे इकट्ठा करने वालों के हितों का जामिन हो। अगर यह शर्त पूरी नहीं होती तो सविधान में संशोधन होगा। इन सविधान के अन्तर्गत बना हुआ हर कानून यह शर्त पूरी करेगा वरना वह कानून गमन होगा। यही बात मूलरूप में मौजूद होनी चाहिए। इन मौलिक अधिकारों में तथा निर्देशकों में। मेरी तो यही कसौटी है। यही बात सुपता है इस सविधान की हर धारा में, हर शब्द में, हालांकि पठना मुझे नहीं आता।” यह कहकर मैं बैठ गया। कुछ अस्पष्ट-सी बानाफूसी बनी। मेरी दलील में दात-भात में मूलतत्त्व नजर आया।

संविधान के पढ़ित मेरी बात पचा नहीं सके। बात भी जामन है। वे लोग तो संविधान के पूर्णविराम और छोटे-से मुक्तों पर घंटों बहस कर सकते हैं और मूल में वे कमाई भी इसी बात को खाते हैं। मेरी बात तो उन्हें धूल में भट्ट नजर

मासी। एक गणेशन कहते पागे, 'तुम मणिपान की माया ही नहीं समझते और न यह तुम्हारे बग भी जान है। समझ भी रहा न गया और मुँह से निकल गया, तुम मणिपान के प्राण नहीं समझते। इसकी मृत तुम्हारे हाथ नहीं आई। छोटी मोटी मृत-मैं-मैं भी हुई पर जान गलम हुई। निविर गवन।

मेरे निगने का मानव धम इनना-ना हो रहा है कि आज हमारे घोर आपके बीच गार्डे है। एक अनगण्य की स्थिति या गई है या नाशी गई, दर्न-दर्नः। भद्र और अभद्र के बीच। मांग और दाहर के बीच।

प्रोफेसर साह्य, हमारी भाषा मीमी-मादी परन्तु आप लोग मीमी-सादी बात समझने के आदी नहीं बल्कि मीमी-मादी चीज को चतुरदार बना देते हैं जिसके कारण हम लोगों का गिर चकराने लगता है। गहो है यह विभाजन रेखा जो आप को और हमें एक-दूसरे से अलग करती है।

प्रोफेसर साह्य, मुझे दर है कि यह स्थिति सीध ही न सुधारी गई तो हालत खतरनाक हो जाएगी। दोनों के बीच का सम्पर्कमूत्र टूट जाएगा। दो वर्गों को दो भाषाएं हो जाएंगी। एक-दूसरे के लिए अजनबी। फिर साथ कैसे चलेगा? निवहि नहीं होगा।

सुनते हैं कि ऐसी स्थिति पहली बार ही नहीं हुई है। पुराने जमाने में भी कई बार ऐसा हुआ है। एक बार की बात बतलाते हैं। हालात भी आज जैसे थे। बड़े-बड़े लोग थे। सारे शास्त्र कण्ठस्थ थे, परन्तु ये सभी के सभी स्वार्थी और दम्भी। साधारण की बात न तो सुनते थे और न समझने की कोशिश करते थे। इन सब चीजों का नतीजा यह हुआ कि अभद्र लोग भद्र लोगों से अलग-थलग हो गए।

ऐसी हालत में, एक आदमी आया और उनकी ही भाषा में ऐलान किया कि अपने आस-पास के लोगों को तड़पता हुआ छोड़कर स्वर्ग की तमन्ना करना भी पाप है। मुझे ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिए। उसने ये सारी बातें कहीं 'जनभाखा' में जो सबकी समझ में आ गई। जनता उसके पीछे हो गई। कारण केवल इतना ही था कि जनता पंडित लोगों से बुरी तरह से कट चुकी थी। ये पंडित लोग बात का इतना महीन सूत निकालते थे कि प्रथम तो 'सूत' ही नजर नहीं आता था और अगर यह 'सूत' पकड़ में आ जाता तो घागा टूट जाता। कभी-कभी उलझ भी जाता। बेचारा साधारण आदमी 'रास्ता चूक' और दिक्भ्रमित।

लोगों ने कई बार सामूहिक रूप से कहा भी बतलाते हैं कि शास्त्रों तथा

उपनिषदों की बातें हमारी समझ में नहीं आती हैं, हमें उस बोली में समझाओ जो हम समझते हैं। इनकी टीका करो 'जनभाषा' में। परन्तु जो साधारण छात्रों की सुने वह पंडित कैसा? उन्होंने टीका को मूल से दुस्र्हा बना दिया। वे तो ऊपर की ओर ही देखते रहे, चांद-सितारों की ओर। ग्रहों की चाल-डान देखते रहे, ज्योतिष की बात करते रहे। टेढ़ी-भेड़ी नकीरें खींचते रहे, परन्तु कभी अपने पैरों के आस-पास देखने की कोशिश नहीं की।

परन्तु इस बार 'जनभाषा' में ऐलान करते हुए सुना, मानव-मान के दुनों की निर्दोषता का दुस्सा सुना तो उनकी समझ में आ गया कि निर्दोष क्या है, मोक्ष कहा है। लोग बिस्वा उठे, "यह तो बुद्ध है।" बहुत समझाया कि यह तो राज-कुमार सिद्धार्थ है, परन्तु कौन सुनता? वह तो बुद्ध ही रहा और सारे के सारे पंडित बुद्धू रहे।

प्रोफेसर साहब, यह क्या हुआ, कैसे हुआ? राजकुमार सिद्धार्थ को महत्त्व का ज्ञान न हो, जचने वाली बात नहीं। फिर यह 'जनभाषा' का माध्यम क्यों? राजकुमार सिद्धार्थ के दिमाग में भी क्या बहुत कुछ इसी प्रकार के विचार और प्रतिक्रिया नहीं हुई होगी? तरकावीज परिस्थितियों में असहाय की स्थितियों से बचने के लिए, वर्गभेद मिटाने के लिए क्या यह सब कुछ नहीं किया? बोधिवृक्ष के नीचे और क्या हवाल धाया होगा? राजकुमार सिद्धार्थ ने सवात का दोहन किया और समाधान बुद्ध लिया।

धगर घाप इतने दूर नहीं जाना चाहते तो घाप से तो नानक, कबीर, ईशान आमा बगैरह की। उन्होंने भी बात की 'जनभाषा' में। लोगों की जमात उनके पीछे हो गई। लोगों ने बना दिया किसीको धीर तो, किसीको पैगम्बर। जब नानक-कबीर बगैरह ने बात की तो दिन खोलकर बात की, बिना किसी ज्ञान-सपेठ के। तर्तीजा यह हुआ कि उनकी बात लोगों के गले में उतर गई। उनकी बात 'बाणी' बन गई, शब्द बन गई। उनकी 'बाणी' व 'शब्द' भजनों में गाए जाने लगे। आज भी संकड़ों वर्षों बाद हम लोग उनकी बाणी बोलते हैं, 'शब्द' दोहराते हैं। भजन गाते हैं तन्मयता के साथ। इसमें रहस्य की बात नहीं। बात सीधी-सी है। दिल से निकले हुए 'शब्द' और 'बाणी' सीधे दिल में धुस जाते हैं। इतनी-सी बात है।

तो, प्रोफेसर साहब, मेरा तो कहना यही है कि धगर घाप सचमुच किसी

ताजमहल की समझ में है। और गढ़-दिव से माहों से कि हम देश के लोग देश-निर्माण के माह-यज्ञ में तयारी के लिए घर-घर भाग लें तो आसानी से बनाया जा सकता है। बनावट में कुछ नहीं गम, विनाश में कुछ नहीं रखा है। पत्थरी के नुंग की बात है। हा, एक बात धीरे स्पष्ट करनी होगी। यदि आप हम के लिए बनाया या अगस्त जाना चाहते हैं तो बात दूसरी है, हमें कुछ नहीं बड़ता है। लोग माहों के नाम से नारा माहों से पर अशक्तता में वे अपने परिवार को ही गोसावा समझते हैं। यह तो हुई मंच की बात, निवत चाहे कुछ भी हो। आप भी हज कर आइए तथा अपनी रोटी सेंकते रहिए; परन्तु अगर आपका खरा भी बिनाबदला नगाव है हमसे, तो बात करिए हमसे। आप हमारी तरफ मुंह करिए, पीठ नहीं।

प्रोफेसर साहब, मैंने अपने दिव की बातें कही हैं, आपसे। सहज भाव से, जैसा कि मैंने महसूस किया। आप विश्वास रहिए, मैं न तो किसीके चक्कर में हूँ और न मैंने कोई नया 'भैरव' ही बनाया है। न मेरी प्रेरणा किसी रंग की किताब से जागी है। वक्त का तगजड़ा देगता हूँ। बेमतलब की देरी से बात बिगड़ने का डर है। अभी तो 'बेटी बाप के घर' ही है, परन्तु पासा पलटने में देर भी नहीं लगा सकती और न वक्त ने कभी ठहरकर कहीं विश्राम ही किया है।

आपके पत्र की प्रतीक्षा में।

राम-राम के साथ।

भवन्निष्ठ
दी वेगाराम
वकलम दीर्घचक्षु

आलू की सम्यता

बात चली कि चलने लगी। बात में से बात निकलने लगती है। बात की चाल भी यहाँ की बात की तरह अजीब होती है। कभी-कभी तो जरा-सी ही चली कि बकरी होकर दंगल के दलदल में फँस जाती है। बात बन जाती है नौ मण की, घटक जाती है। इसके विपरीत कभी-कभी बात उड़ती हुई इतनी द्रुत गति से चलती है कि उसके सामने मुपर सेनिक जेंट भी क्या करे। उसरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक एक ही छसाय में।

हा, तो बात चल रही थी, आधुनिकता की। मोडनिटी की। व्यवहार में तथा विचार में। मोटा सवाल था, आखिर आधुनिक किसको माना जाए? आधुनिकता का मापदण्ड क्या हो? व्यवहार में तो यह देखने में आया कि लोग आधुनिकता का मुसौटा लगाये रहते हैं और उस मुसौटे के नीचे छुपा रहता है उनका बौदापन। जरा-सा भी कुरेदा तो फिर उसका भौदापन निकल आता है। डबने के लिए संस्कृति की जड़ें पास में रहनी चाहिए। प्लास्टिक सर्जरी सब क्षेत्र में छा गई है।

“तो आपके हिसाब से,” एक सज्जन कहने लगे, “आधुनिकता का मापदण्ड मुँह बोलता हुआ हो। आपके हिसाब से न उसके विवेचन की आवश्यकता रहे और न किसी प्रकार की बहस की गुंजाइश।”

“ऐसा मापदण्ड तो मैं बताए देता हूँ,” मेरे पास में बाईं तरफ बैठे हुए सज्जन कहने लगे, “आधुनिकता का मापदण्ड यह है कि कौन कितना आलू पैदा करता है तथा कितना आलू खाता है। यह बात व्यक्ति तथा देश दोनों के लिए लागू होती है।”

“यह तो बताइए कि यह आपके दिमाग की ही उपज है, या इसका कोई और मापदर भी है?” मेरे दाहिनी तरफ बैठे एक सज्जन बोन पड़े।

मजबूत रूप । मजबूत आगे आगे-आगे दोनों तरह मजबूत ।

‘आप इनप्रति कैसे रिपॉर्ट दो ? जब मू. इंचेन भारत में आए थे तब उन्होंने एक सर्वेक्षणित मंच में यह बात कही थी, और वह भी साक्षात् जोर देकर । अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने हम में आलू-उत्पादन के घातकों से हम की प्रति की सफलता का प्रतिपादन किया था ।’

सामांसी मजबूत ने अपनी दलील के पीछे मू. इंचेन के नाम की सील लगा दी ।

‘बात जमी भी है और जंगली भी है,’ मैंने भी अपनी बात मजबूत में फैली ।

कलाश को ले लीजिए, वहां अन्त्यान्त देशों में लोग आलू उगाड़ने जाते हैं । हमारे देश से भी बहुत सारे लोग आलू उगाड़ने गए और वहां पर आबाद हो गए ।

‘मू. इंचेन कोई अगोस्टी छोड़े ही हैं । उसकी मानते नहीं उसकी विरादरी के लोग भी । ‘जात-पात’ से वहिष्कृत को आप पेश कर रहे हैं, कमाल है ।’

मेरे दायें ओर से प्रतिक्रिया ।

आप तो सब जानें जब किसी वेदव्यासजी ने कहा हो, उपनिषद् में कहा गया हो, परन्तु बेचारे वेदव्यास जी के साथ दिक्कत यह थी कि उन्होंने तो आलू खाए ही नहीं थे । उन दिनों चावलों का चलन था, इसलिए चावल का जिक्र किया, और चावल से सम्यता का प्रादुर्भाव हुआ । आगे चलकर चावल में भी यह देखा जाने लगा कि वह अक्षत हो । अगर अक्षत नहीं तो चावल नहीं । बस सारा जोर चावल से हटकर अक्षत भाग पर पड़ गया । जो अक्षत नहीं वह ग्राह्य नहीं । चाहे चावल या बीबी । अक्षत की शर्त अनिवार्य । यह थी चावल की सम्यता का माप-दण्ड । खुदा-न-खास्ता अगर वेदव्यास जी वर्ग-रह ने आलू की टिकिया वर्ग-रह खाई हुई होती तो वे अष्टादश पुराण और ही तरह से लिख जाते । कोरा चावल खाकर तो कोई जिन्दा नहीं रह सकता । बेरी-बेरी का रोग हो जाता है, रतौंधी हो जाती है । बस यही बात है चावल की सम्यता में । पुराण पढ़ते रहो, रतौंधी नहीं होगी तो फिर क्या होगी ?”

एक और प्रतिक्रिया ।

“इसका मतलब क्या यह समझा जाए कि आलू खाना आधुनिक होने का

सबूत है," मेरे मुंह से निकल गया।

"इसमें क्या दो राय हो सकती है? जो देश जितना सम्य होना, वहां भालू का उत्पादन उतना ही अधिक होगा। यही बात व्यक्ति पर लागू होती है। 'मस्ट्रा मोडर्न' भ्रादमी भालू के सिवाय कुछ माता ही नहीं, मेरा मतलब 'वेज डाइट' से है।" मेरा वामांगी दोस्त कुछ घोर भी कहता कि मेरे मुंह से निकल गया—

"केवल भालू ही भालू।"

"भालू को आप क्या समझते हैं? भालू से एक हजार प्रकार के व्यंजन बन सकते हैं। भालू से खीर, परांठे, हलवा बनाकर न जाने कितनी ही चीजें बन जायेंगी हैं।" भावाज ने कुछ गुस्सा पा।

"पर यह तो भालू की उत्पादेयता की बात हुई, इसमें प्राधुनिकता कहा घुस गई?" मैंने दबील दे दी।

"दिव्यता तो यही है कि आप लोग न तो समझते हैं और न समझने की कोशिश ही करते हैं। भालू सब्जी भी है और फल भी है। इसको दोनों ही तरह से खाया जा सकता है। प्राधुनिकता की सबसे बड़ी कसौटी तो यही है कि चीज की 'मस्टी परपज' उपयोगिता हो। भालू में ये मायी विशेषताएं हैं। इसको भ्रादमी और जानवर दोनों ही खा सकते हैं। मछान की बात नहीं है, जरा गभीरता से सोचिए। भालू में एक और विशेषता है।"

"यह क्या?" मेरी जिज्ञासा को सब न रहा।

भालू में असोम क्षमता है विकास की और सम्बर्द्धन की। घुरसा को मात मिलती है। भालू एक छटाक में चार भी तुलते हैं और अकेला भालू चार किलो का भी हो सकता है। पृथ्वी के ग्रह पर विस्फोट की गति से बढ़ती हुई, जनसंख्या की समस्या का समाधान भी भालू-उत्पादन से ही संभव है। भाने वाले समय में इतनी जगह इस सिक्कड़ी हुई धरती पर कहाँ रह जाएगी कि सब्जी और फल दोनों ही अलग-अलग उगाए जाएं।

मुझे एक मछान सूझा, "गांधीजी की ट्रस्टीशिप व्यवस्था में कीड़ी को कण और हाथी को मण की व्यवस्था है। भालू की सम्मता में कीड़ी को छोटा भालू दिया जा सकता है और हाथी को बड़ा भालू। बस दित चलने वाली स्थिति नहीं रहेगी। 'डोल सार्' भालू दे दिए जाएंगे। आखिर, हम जो खोपड़ियां गिनने के भाये हैं, भालू गिनने लगेंगे। कोई दिक्कत नहीं।"

“आप सोच लीं आलू-भाजियाँ की खान करने लगे। आलू की आगिर फूट वेल्यू क्या है ?”

मेरे दाहिने थोड़ा बड़े हुए मासूम धरमो भुंभलाहट पर कायू न पा सके। उठान पड़े। “आपने ग्रामने समझा है ‘फूड’ की। समझा है ग्रामी पेटों को भरने की। जो पेट भरा मित्र हुए भाइयों की हवन कर सकते हैं, मनुष्य की घात को पना सकते हैं, उनका ‘फूड’ आदि। ‘वेल्सू’ तो गीन है। आलू से बढ़कर कोई और चीज नहीं। एक नया नारा उठान हो सकता है। एक आदमी एक आलू। एक गाँव-भरवा नारा बन जाएगा।”

सारी मजबूत नारे के नाम से हंस पड़ी।

“आप हंसना चाहें तो हंसिए। आज की परिस्थितियों में लोगों को जब बात समझ में नहीं आती तो वे अपनी प्रतिनियामों दो ही तरह से व्यक्त करते हैं, हंसकर या हूटिंग के द्वारा। आप भी ऐसा कर सकते हैं, परन्तु मेरा तो कहना है कि ‘एक आदमी, एक आलू’ के सिद्धांत को यदि ग्रामी जामा पहनाया जाए तो खाद्यान्नों में ‘एडलटेशन’ की बीमारी भी पकड़ में आ सकती है, परन्तु आलू में तो आलू ही मिल सकता है।”

वामांगी दोस्त की मुसमुद्रा गंभीर थी।

“ये तो विलकुल नई जानकारीयाँ हैं जिनका पता तो शायद खू इचेव को भी नहीं था।” एक उड़ता हुआ कमेण्ट।

“दूसी वजह से तो उसे संशोधनवादी कहा गया। उसे ‘पेटेटो कल्चर’ की पूरी जानकारी नहीं थी।” दूसरा कमेण्ट।

“वात चल रही थी आलू की फूड वेल्यू की ओर उसके साथ चिपका दी गई अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति। वात चल रही थी खाद्य समस्या की ओर उसमें घुसेड़ दी गई राजनीति। कमाल है !” एक कोने में बैठे हुए सज्जन और अधिक मौन न रह सके।

“राजनीति भी एक फूड है, आप समझे नहीं।” पास बैठे हुए सज्जन उन्हें नई थीम समझाने लग गए।

“बड़ी अजीब वात है !” उनके गले वात उतर नहीं रही थी।

“अजीब-वजीब कुछ नहीं है। खाद्य-समस्या भी अपने-आपमें एक राजनैतिक समस्या है।”

“भाप बहना क्या चाहते हैं ?” उन्होंने गुराँकर उनकी भाँलों में देखा । बात का धेनु सरककर एक कोने में चला गया और सभी के कान और भाँलों उधर की ओर मुड़ गई ।

“मैं वह नहीं रहा हूँ बल्कि भ्रष्ट कर रहा हूँ कि राजनीति से अलग किसी चीज़ का अस्तित्व ही नहीं । राजनीति का प्रवेश सब जगह है । जब लोग, तेन्दु पत्तों की बात करते हैं तो लोग समझते हैं कि बीड़ी की बात होगी । तेन्दु पत्तियों से केवल बीड़िया ही बघती हों ऐसी बात नहीं, उससे राजनीति भी बघती है । भोंपड़ों में रहने वाला कोई व्यक्ति जब बीड़ी में घुघ्रा निकालता है तो उस घुएं में राजनीति भी घुघ्रा निकालती है । साधारण बही-बढ़े व चाट खाने वाले को पता नहीं कि उबलते हुए तेल में राजनैतिक उवाच भी होता है । बड़ा तला जाने के पहले उम भूगफली के तेल में न जाने कितने राजनैतिक उवाच खाए हैं ? सो मेरी भ्रष्ट है कि क्या तेल, क्या भूगफली ? सभी में राजनीति घुसी हुई होगी है । राजनैतिक जलवायु ठीक न हो तो सारी चीज़ें झनूकूल होने पर भी भूगफली उगेगी नहीं और यदि उग भी गई तो तेल नहीं निकलेगा । यह है भूगफली की राजनीति, वेदोल की राजनीति । घुड़, लकड़ में भी राजनीति लिपटी रहती है । कई मक्खियाँ भनभनाती रहती हैं और कभी-कभी फंम भी जाती हैं । राजनीति कभी सड़क पर चीबती है तो कभी रासद् में गुंजती है । कबीरदास जी तो देवकत ही मर गए वना ‘माया महाठगिनी हम जानी’ के वजाम कुछ और ही लिखते ।”

बात पूरी भी न हुई थी कि मजलिस बिल्ला उठी । “बूय, बूय !”

परन्तु भालू की राजनीति का क्या हुआ ? मेरी जिज्ञासा बोल उठी ।

“भालू की राजनीति बिलकुल ज़रा भिन्न होती है । भालू जमीन के अन्दर ही पनपता है और अन्दर ही अन्दर बढ़ता है । इसका मतलब यह हुआ कि सारी की सारी प्रक्रियाएँ अन्दर घाउण्ड ही होती हैं ।” मेरा पड़ोसी बोला ।

“और ?” मैं उसके मुँह की तरफ देखने लगता हूँ ।

“और क्या ? शास्त्रों में लिखा है कि जैसा खामो घन, वैसा होवे मन । भालू खाने वाले के मनोविकार व अन्य बीमारियाँ भी अन्दर ही अन्दर चलती हैं, पूरी तरह से बढ़ने पर ही सतह पर साईं जाती है ।”

“जैसे—” मेरे मुँह से निकल गया ।

जैसे कि आन्तरिक घुटन, स्नायविक दबाव, कुण्ठाएँ बगैरह जो कि भालू की

मरत मरत ही सत्यर बटने जायेंगे। ये भीमाशिरवा भी धामनिकता के सावरण हैं। धामु और धामता सम्बन्ध नहीं है जो धाम और मरुहे का है।

"और धामता ?" में धामनी धामता जो धामता नहीं मरता।

"धामता भी है, फोल्ड स्टोरेज में रहते।"

"धामता—"

"धामता यह होगा कि धामता उक्तमे मरगा मरगा होगी। धामतामरता है जो धामतामरता फोल्डगी। धामता धामता में मरगा होता है।" मेरे दोस्त ने मरुहे धामता कर दी।

"धामता मेरी मरगा में धामता कि धामनिक सम्बन्ध धामता की सम्बन्ध है जो कि फोल्ड स्टोरेज के धामता जीवित रहती जा सकती है।" मैंने स्वीकार किया।

"देर धामता दुस्त धामता।" मरगा धामता है।

आमने सामने

प्राज के युग में जब कोई नारा निकलता है तो नगाडा बजता है। नगाड़े पर धोट के साथ ऐलान होता है "मलेरिया को समूत मष्ट करो, मच्छरों को भगा दो।"...."बीमारिया हटाओ, मक्खियों को मार भगाओ।"...."भूग की समस्या को दूर करो, चूहे भगाओ।"

...."प्रशिक्षा हटाओ, घन्घविश्वासों को मार भगाओ।"

एक साते-घन्छे अधिकारी ने जनपद लोगों की एक यमा बुला नी घौर उद्बोधन के स्वर में कहने लगे कि हर व्यक्तिको, चाहे स्त्री हो या पुरुष, शिक्षा होना चाहिए। शिक्षा जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक है। शिक्षा से जीवन-स्तर ऊंचा उठता है, शिक्षा का महत्व व....

जनपदों में से एक छोटे व्यक्ति अपनी दाढ़ी पर हाथ केंरता हुआ गढ़ा हुआ घौर अधिकारी रुक गए। ऊपर कोई पंचाम के ऊपर ही होनी चाहिए। दाढ़ी रुपये में धारह घाने वाली जैती हो गई थी। बड़े घडह से बोला : "घाय जो शिक्षा का महत्व व माहात्म्य सुनाने जा रहे हैं, वह तो हमारे लिए नई चीज नहीं है क्योंकि माहात्म्य सुनने के तो हमारे बान घादी हो चुके हैं। घौरतें बार्निश माहात्म्य सुनती हैं। अब-अब काठिक वा महीना घाना है, काठिक माहात्म्य शुरू हो जाता है, वही पाठ, वही कथा। हा, 'बाचने वाला' 'बाच' (बापन) देता है, सुनने वाला सुन लेता है। काठिक बीग जाता है, मगधिर घा जाता है। कथा-वाचक अपनी पोपी फिर से अपने घरों में रग देता है। पूरे ग्यारह महीने उनकी कोई 'निय नहीं बांचना' (राउर नहीं लेता)। इस बीच में घपर दोमर घा घमके तो दूसरी पाठ है। परन्तु मून में मेरी पका रह है घौर जवाब चाहूना 'हा' वां 'ना' में।"

सभी जनपदों की जमाउ हंस पड़ी।

"क्या कथावाचक मुझ में एक खोपसाखिन्ना के अन्तर्गत किसी तरह की रचि कथा में रचना है ? क्या वह उपमावाचक से किसी प्रकार अनुमानित व प्रभावित है ? चाहे और पर, क्या उसकी आस्था है ?

"अगर कथावाचक की धारणा होती तो वह अपनी कथा को निम्नलिखित में, नये उपमे ऐसे पैदा करता कि श्रोताओं के दिनों में भी रचि पैदा करवा देता।

"अगर श्रोताओं की रचि होती तो वे कथावाचक के 'कल्पे पढ़' जाते और उसे कथा 'वाचने' को विवश कर देते। कथावाचक की कथा मजबूत कि वह ग्यारह महीने तक कथा का नाम ही नहीं ? मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि अगर श्रोताओं में से एक भी उस कथा या कथावाचक से दिनों में प्रभावित हुआ होता तो वह मुद कथावाचक बन जाता और उस 'प्रॉफेशनल' कथावाचक को भगा देता। परन्तु मूल में बात इतनी-सी है कि कथावाचक कथा में रचि नहीं रचता। उसकी रचि है तो उस 'चढ़ावे' में जो कथावाचक के दौरान उसे मिलता है। अगर कथावाचक को बीच ही में पता लग जाए या वह महसूस करने लगे कि फालतू में 'गोड़ा घिसन' है तो वह फालतू मास की समाप्ति के पहले ही कथा-समाप्ति की घोषणा कर देगा। दूरी उठाने वाले अपनी दरियां य जाजमें उठाकर चल देंगे। हमने तो इस प्रकार के 'माहात्म्य' व महत्त्व की बातें सुनी है। अब आप कोई नई बातें कहना चाहें तो कहें।"

अनपढ़ लोगों की सभा में एक चुलबुलाहट आ गई। एक प्रकार का जोश दृष्टिगोचर होने लगा। कुछ दादें गिलने लगीं।

"वाह रे 'वेगा' ताऊ। बात 'मरम' की कही है।"

एक प्रकार की सामूहिक अभिव्यक्ति। सभी अनपढ़ों की मुख-मुद्रा से ऐसा आभास हो रहा था और वे सभी इतने खुश थे जैसे कि चौधरी बेगाराम को, जिसने जमाने के कई तेवर देखे हैं, कोई डाक्टरेट मिलने जा रही है।

वक्ता महोदय ने कभी अन्दाज ही नहीं लगाया था कि शहरी शब्दावलि में अनपढ़ ग्रामीणों की सभा में भी कोई 'भाटा' फेंक सकता है। वह कुछ देर तो श्रवाक् रहे, परन्तु शीघ्र ही अपने को संभाल लिया और बोले, "भाई बेगाराम, तुम कहना क्या चाहते हो ? मैं कोई कथा 'वांचने' नहीं आया हूँ। तुम गांव वालों से यही तो दिक्कत है कि तुम बात समझते नहीं और न समझने की कोशिश करते हो।"

"इस बात को धाय यो कहो," बेगाराम ने बात 'झप' सी और बहना जारी रखा, 'गांव का घादमी बात सुन लेता है, बात उसकी समझ में आते नहीं भाती हो। हर जानवर व हर धनपड़े घादमी की सुघने की शक्ति नहीं मरती। वह दोस्त व दुश्मन का फर्क गूँथकर पता लगाता है, समझकर नहीं। परन्तु ज्यों-ज्यों घादमी पढ़ता जाता है, उसकी गूँथने की शक्ति खोप होने लगती है।"

मैं चुपचाप देगता रहा, एक घसमान दगल, दो व्यक्तियों के बीच। एक तरफ तो वह व्यक्ति जो एक बहुत बड़े दफ्तर में बैठता है, कार में चढ़कर भाता है। गर्मी में कूलर लगे हुए कमरे में बैठकर 'बेगाराम' की समस्याओं के बारे में सोचना रहता है। 'बेगाराम' की समस्याएं क्या हो सकती हैं इसके बारे में किताब खोलता है। फिर बिताब खोलता है, समाधान पढ़ता है, समस्याएं कैसे सुलझने-उलझने लगती हैं।

बेगाराम की समस्याएं 'वेगी' मुनर्भों, इस मकसद से बड़ कनाडा जाता है, आर्कटिक वृत्त में रहने वाले लोगों से पूछता है कि बेगाराम की समस्या का निदान बताओ। 'बेगाराम' सोनिधर तो मर गया और उसकी समस्याएं उसके साथ ही सती हो गईं। अब इस नये बेगाराम की समस्या। बेगाराम जुनिधर्स कई हो गए। फिर जुनिधर्स के कई जुनिधर्स हो गए। समस्याएं मुनटनी चाहिए।

बेगाराम की समस्या के लिए वह इन्लेण्ड गया, रसेल रिपोर्ट पढ़ी। जर्मनी गया। यूनेस्को से बात की। अगर कहीं चूक हुई तो बस इतनी-सी कि उसने 'बेगाराम' से बात नहीं की। बेगाराम की समस्या के लिए तो सात ममूद पार तक की लाक छान सकता है, परन्तु 'बेगाराम' से क्या बात करे? एक मूलभूत दिक्कत है। एक दीवार है। बेगाराम सूँघता है, समझता नहीं। उसके पास 'इंस्टिक्ट' है, 'इंस्टिक्ट' नहीं। उसकी व्यवहार-पद्धति 'इंस्टिक्टिव' है। प्रोफेसर साहय जानते हैं कि इसी आधार पर तो जानवर चलते हैं। बात सही भी है। बेगाराम की बिरादरी में घादमी और जानवर दोनों ही भाते हैं। उसने अपनी गाय, बैल, ऊट, भैंस को भी पारिवारिक सदस्य का रूप दे रखा है। उसकी खाट के पास ही राखी रहती है उसकी गाय, जो कभी प्यार का प्रदर्शन करने के लिए उसकी हथेली को चाटने लगती है।

मैं सोचने लगा। प्रोफेसर साहय कुतुबमीनार पर खड़ा होकर बात कर रहा है और उस ऊँचाई पर खड़ा होने के कारण जमीन पर खड़े हुए बेगाराम

भी मरता पाए। यही मही स्वयं में दिखाई नहीं देती और जब वह दूसरों के समक्ष होता है तब उसे एतना महत्त्व नहीं दिखाता नहीं। यह धामान की कठिन समस्या है और कठिन को धामान।

मैं सोचता हूँ। क्या प्रोफेसर और वेगाराम में कोई 'आपस' है? वेगाराम की शक्तों की हूँ नहीं। क्या वेगाराम की बात, जगती अनुभूति की तीव्रता शक्ति मर मरता है? मुझे पता है? मुझे के बाद समस्याओं की प्रकृति और होती है। योंही ही लगती है बात कागजों है। उनके बीच क्या 'अन्तर' है? 'अन्तर' की आवश्यकता नहीं है? मैं समझता हूँ। साथ सोचने की कोशिश करना है कि इसी बीच में तार-तार जाता है जब प्रोफेसर साहब और वेगाराम के सम्बन्ध का 'वास्तव' कुछ ऐसा हो जाता है। "तुम क्या कहना चाहते हो, वेगाराम? प्रोफेसर तुम्हारी बात क्या दो टूक शब्दों में नहीं कहती जा सकती है?" प्रोफेसर बोले।

"आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, परन्तु यह समस्या तो उन लोगों की है जो अपने आपको पढ़ा-लिखा कहते हैं। पढ़े-लिखे आदमी को या तो बात कहनी नहीं आती या जान-बूझकर वह अपने मतलब के लिए शब्दों का जाल फैला देता है। चलो, मैं अपनी बात दो टूक शब्दों में कह देता हूँ परन्तु इस उम्मीद के साथ कि आपका जवाब भी दो टूक शब्दों में हो। मेरा सवाल है : एक आदमी को कितना साक्षर होना चाहिए और कितना शिक्षित?"

सभी अनपढ़ों की टोली एकदम गम्भीर। उन्होंने सूँघकर पता लगा लिया कि बात हंसी की नहीं है।

"तुम्हारा मतलब मैं समझा नहीं आई वेगाराम।" प्रोफेसर ने कहा।

"प्रोफेसर साहब दिक्कत यहां है और यही है। चलो, मैं उदाहरण देकर बात समझाता हूँ।"

"कुछ दिन पहले यहां एक डाक्टर साहब आए थे और समझने लगे कि आदमी को नीरोग रहने के लिए इतनी 'कैलोरी' चाहिए। हमने पूछा कि यह कैलोरी कहाँ मिलती है, तो कहने लगा कि कैलोरी अलग-अलग मात्रा में हरेक चीज में मिलती है। दाल में, सब्जी में, गेहूं में, अण्डे में, दूध में, दही में आदि। पूरी मात्रा में कैलोरी प्राप्त करने के लिए दाल खाओ, दूध पीओ, सब्जी खाओ कि कुल मिलाकर कैलोरी का टोटल पूरा हो जाए।

"हमने सवाल किया कि अगर कुछ कमी-बेशी रह जाए तो ?

“ डाक्टर ने समझाया कि शरीर की पूरा भावों नहीं दिया तो तुम्हारे दात जल्दी टूट सकते हैं, जोहो में दंत का सञ्चालन है, दम फूल सकता है और दुनिया से भी समय से पहले जाना पड़ सकता है। सोच लो, समझ लो डाक्टर ने किता चम्पक हो या हमारे गले न्तार दो। यह तो हुई बात। हरेक भादमी की समझ में आ गई कि बोरा चावल खाना शरीर से खाली नहीं। फोरी चीनी खाकर कोई भी नहीं सञ्चालन। हम समझ गए कि शरीर की कैलोरी का टोटल पूरा करना है, वना पनरा है। बँगोरी नरो, दान खाकर, दूध पीकर, रोटी खाकर। अगर दसका हिताय-चुक्ता नहीं जिजा लो वह लो 'बनिये' की तरह पुरानी बाकी निकालकर बोझ बढ़ा देगा। घर छुटवा देगा। बनिये का भी हिताय चुक्ता रहना चाहिए, वैसे ही इस शरीर-रूपी बनिये का भी हिताय पूरा रखना चाहिए। वरना भ्रष्टताल जायो, दशाया जायो, साठ सेवो। यह ब्याज गहगा पड़ेगा, यह बान भासानी से समझ में आ जाती है। लेकिन घाय लोग भाषण भाड़ देते हैं, परन्तु दो दूक शब्दों में क्यों नहीं बताते कि हमें कितना साधार होना चाहिए, उसका कोई नाप-ओल भी है कि नहीं? अगर कोई साधार हो गया तो उसमें क्या फर्क पड़ेगा? क्या साधार हुए बिना कोई शिक्षित नहीं हो सकता है? क्या केवल नाम-मात्र लिखना सीख गया तो कोई 'बैतरणी' पार हो गया?”

सारी की सारी समा बेगाराम की बात सुन रही थी वही सम्यक्ता से। मन-पड़ बेगाराम एक पदे हुए की बोलनी मन्द कर रहा था।

बेगाराम को धान्त रहने व अपनी जगह पर बैठने का संकेत देते हुए प्रोफेसर शाहब कहने लगे -

“तुम्हारी बात से सहमत हूँ और इसीलिए ये विभिन्न प्रकार की योजनाएं बनाई जा रही हैं और ये केन्द्र खोले जा रहे हैं। घाय इन केन्द्रों के सञ्चालन में मदद करो। अध्यापक जो पढ़ाने आएँ उनसे सहयोग करो। सभुल निरक्षरता-निवारण करने की योजना है। घाय सब लोगों के सहयोग से ही तो हम सब मिल-कर इस महान् कार्य का सम्पादन कर सकते हैं।

“मैं यथादा तो नहीं बहूगा क्योंकि आजकल लोग काम करना तो नहीं जानते परन्तु काट करना जानते हैं। मैं बिना मतलब की बहस नहीं करूँगा। परन्तु एक बात कहूँगा।

“भाप देखिए, इस रात में (ऐसा ही अन्य रातों में) सभी लोगों ने ऊँडगाड़ी

घोर बीमारी में सामने की चर्चक सदा रहने दे, गुमाने लज्जी के लिये मत। मेरा पार्सल उदाहरण मान लेंगे सब ही मानें गुमाने चर्चकी में बड़ी लज्जा रहने है। परन्तु किसीमें बड़ी तो नहीं कि सामने माही में गुमाने राज के पार्सली के चर्चके लगता भी। ”

“ मुझे लगाइए तो, उन चर्चके के चर्चकी की सदासदा किसीने की ? तोड़ भी मोड़ना भी, तोड़ नई बात भी, यह सब सब भी सदासी है जबकि उसी उदाहरण समझ में आ जाए। लोगों के मन उतर जाए।

“ ये प्रोड क्या पढ़ेंगे ? आप चाहते हैं कि मैं पढ़ें, यह कल्प है, यह दया है, यह नेट है। ” ये चीजें तो अपने बहुत पढ़ने देना भी थीं। प्रोड को यह बहुत बच-गाना मान लगती है। पढ़ाने जाना बचना नदना है। जब यह देना है कि पढ़ाने माने अध्यापक को चालीस रुपया मिलता है तो उसके मानस में एक प्रतिक्रिया आगती है। वह प्रतिक्रिया होती है रहम की, दया की, दया की उस व्यक्ति की विवशता की जो ४० रुपये महीने की प्राप्ति के लिए अध्यापक का मुखौटा लगाकर, अपने सारी चेहरे को छुपाकर, अपनी आर्थिक मजदूरियों पर पर्दा डालकर, प्रोडों को पढ़ाने का स्वांग करता है।

“ किसी भी अध्यापक के लिए आवश्यक है कि पढ़ने वालों के दिलों में अपने अध्यापक के प्रति श्रद्धा के भाव जागृत हों, पढ़ाने वाला अनुकरणीय हो, उसके जीवन में कुछ जीवनदर्शन का आभास हो, परन्तु इसके विपरीत जब पढ़ाने वाले के प्रति श्रद्धा के बजाय रहम के भाव जागें, बिना कहे ही उसकी मजदूरियां व अभाव की स्थितियां मुखरित हों तो फिर उस अध्यापक से पढ़ने वाले क्या पढ़ेंगे ?

“ उनका निष्कर्ष होगा तो यही कि यह हमारा अध्यापक पढ़-लिखकर भी, इतना अभावग्रस्त व आर्थिक दृष्टि से इतना बेवस है कि वह चालीस रुपये में अपनी मजदूरी बेच रहा है। हर प्रोड जानता है कि मजदूरी मजदूरी ही होती है, चाहे चेजे पर जाए, चाहे मिट्टी खोदे, चाहे पढ़ाने जाए। मजदूरी के पीछे मजदूरी होती है, सेवाभाव नहीं, इसी रहम के पीछे, वह शिकायत नहीं करता कि अध्यापक निरन्तर आता है कि नहीं।

“ केन्द्र कागज में चलता है, परन्तु कोई देहाती, कोई प्रोड शिकायत नहीं करता और अगर कोई अधिकारी पूछे तो भी इन्कार कर जाता है। क्यों ?

कारण के लिए दूर नहीं जाना पड़ता। उसके खून में एक बात चली भा रही है कि किसीके पेट पर लत मत मारो। कोई पल रहा है तो पलने दो। पेट पर लत मारने से पाप लगता है।

“यह है एक स्थिति, सही स्थिति ग्रन्था ग्रन्थों को रास्ता दिखा रहा है। बोलो प्रोफेसर साहब ! यह है न कार्तिक माहात्म्य। सही चित्रण।

“अगर आप जानते नहीं तो फिर कनादा जाइए, कारण ढूँढकर लाइए। अगर जानते हुए भी अनजान बने हुए हैं तो आप अपना कार्तिक-माहात्म्य बाँटते जाइए।

“जागते हुए को कौन जगाए। परन्तु आप पर हम रहम नहीं ला सकते। आप और उस अध्यापक में फर्क उतना ही है जितना कि ‘बाटा’ में भीर साधारण मोची में।”

यह कहते हुए बेगाराम बैठ गया। बातावरण गम्भीर हो गया।

प्रोफेसर साहब भी गम्भीर। कुछ देर मौन रहने के बाद मौन भंग किया : “हो सकता है तुम ठीक कहते हो, बेगाराम। कोई है इलाज ? तुम्हारे सोचने का तरीका भीर, हमारा तरीका भीर। इन दोनों के बीच का फासला कैसे पाठा जाए ? एक दिशा में क्या बढ़ना सम्भव नहीं है, या साइलाज है।”

मुझसे रहा न गया, मैं खड़ा हो गया, बोल पड़ा : “इलाज है। ऐसा इलाज जिसे बेगाराम भी समझ लेगा, परन्तु बेगाराम से पहले आपकी समझना होगा। बेगाराम का दिल मजबूर है, दुरस्त भी है। वैसे ही उसके हाथ और इन्द्रियाँ भी।”

“तुम्हारे हिसाब से सारी गड़बड़ियाँ मुझमें हैं, क्या बकवास करते हो ?” प्रोफेसर झुल्ला पड़ा।

“नाराज न होइए, मेरी बात पर गौर फरमाइए। मैं जो भट्टे कर रहा हूँ, वह बात है, एक व्यवस्था की भीर आप उसे व्यक्तिगत स्तर पर ले रहे हैं। व्यक्तिगत स्तर पर सोचने का काम है बेगाराम का, आपका नहीं।”

प्रोफेसर ने मेरी तरफ देखा। दख में तब्दीली नजर आई और मेरी हिम्मत हुई कि मैं बात कह दूँ। बोला : “देसिए प्रोफेसर साहब, समस्या का समाधान बहुत सीपा-सा है, परन्तु खर-खी हिम्मत की जरूरत है।”

“मतलब ?” प्रोफेसर साहब ने मेरी तरफ देखा।

‘महात्मा यह है कि आप वेगाराम की बातें जैसा समझ, सुनकर व विचारित नहीं बना सकते, परन्तु आप वेगाराम बन सकते हैं। क्या यह सम्भव नहीं?’

‘सोचकर मानने में तो एक ठोस आधार है जैसा हमें जैसे कि मैं जानने लगे था-हूँ। मुझे मालूम ही भय नहीं था कि, पर आप के बारे में नहीं जानते थे और इसी कारण मैं कहना चाहती हूँ : “इस देश में लोगों-कर्मियों वेगाराम हैं और इसीलिए श्रीराम।” कम ही लोग, वे पढ़े-लिखे लोग। उनके पास शिक्षा है और शिक्षा के साथ मिलने वाली संस्कृति, एक सम्प्रदाय का आचरण। इस अलग-थलग वर्ग की ‘इलाहाबाद’ कहते हैं। उनकी सामाजिकता है, उनके रहन-सहन का तरीका, मोचने का तरीका, सामाजिक स्तर पर मिलने-जुलने बर्गवाद का अभाव। ‘एटीकट’ है और वे गरीबी की गरीबी चीजें वेगाराम के बस की बात नहीं। वेगाराम आपके यहां चाय पीने या भी जाए तो वह हेरत में फँस जाता है, वह आपकी ओर देखता कि आप किस तरह चाय पीते हैं, किस तरह कप और प्लेट पकड़ते हैं, चीनी किस प्रकार मिलाते हैं। वेगाराम के लिए पर सौ तरह की मुगीबते।

“परन्तु आप वेगाराम बन जाएं तो आपको कहां दिक्कत ! कहां अस्वाभाविकता है।”

“अगर कोई लारेंस शर्बका लारेंस बनकर रह सकता है, तो आप वेगाराम बन जाएं तो क्या बेजा है और आपका क्या घट जाएगा ? महात्मा गांधी ने बैरिस्ट्री पास की, सूट-बूट भी पहना, परन्तु जब वह वेगाराम से मिला तो गांधी को यह बात जंच गई कि अगर वेगाराम मेरा अजीब है तो मुझे भी वेगाराम की तरह रहना चाहिए। वेगाराम कमीज नहीं पहनता तो फिर मैं क्यों पहनूँ ? वेगाराम घुटनों से नीचे तक धोती पहनने के लिए सक्षम नहीं है तो फिर मैं क्यों पहनूँ ? बैरिस्टर मोहनदास वेगाराम से मिलकर उसके साथ एकरस हो गया। दोनों के दिलों की धड़कनों में एक ‘सिम्पेथेटिक वाइब्रेशन’ होने लगा। उसने वेगाराम के लिए सूट छोड़े, कोट छोड़े, अघनने फकीर हो गया। वेगाराम बोला, ‘तू तो महात्मा है।’

“‘नहीं वेगाराम, मैं तो दरिद्रनारायण हूँ, वेगाराम का ही रूप।’

“बोलिए, यह क्या हुआ, यह क्या प्रक्रिया थी। गांधी की शिक्षा कहां गई,

उसकी 'कल्चर' का क्या हुआ ? है जवाब कोई आपके पास ?

" गांधी ने अपने-आपको 'डी-कल्चर' कर लिया । गांधी ने अपनी शिक्षा को 'डी-एड्युकेशन' में बदल दिया । यही बात राजा जनक ने की । वह विदेह बन गया—विदेह यानी 'डी-एडिजस्टम' ।

" धात्र का मानव शिक्षा प्राप्त करके अपने-आपको 'डी-ह्यूमनाइज' कर रहा है—एक हृदयहीन, संवेदनहीन प्राणी । वह एकाकी है । यन्त्रवत् रहता है, यन्त्रवत् जीता है । उसके पास मशीनें हैं । हाथ में बंधी हुई घड़ी की टिक-टिक तो वह सुन लेता है । हर घड़ी वह घड़ी की ओर देखा है, परन्तु अपने सामी सावमी के बच्चे की घड़कनें वह नहीं सुन सकता ।

" अगर इस देश के मे पढ़े-लिखे लोग, यह सोचने का मुनाह करें कि बेगाराम मे ध्यान उनका अस्तित्व है तो वह उनका भ्रम है । वे लोग बेगाराम से काफ़ी दूर धा चुके हैं । वह परायेपन की स्थिति अगर जल्दी ही नहीं सुधारी गई तो प्रोफ़ेसर साहब, जहाँ नहीं रहेंगे । और 'छिल्ले मूले नैव फलं न पुष्पम् ।'

' सो मेरा नम्र निवेदन है कि बेगाराम को साक्षर और शिक्षित करने का एक-मात्र तरीका यही है कि आप अपनी शिक्षा को भूलिए । कल्चर का लयादा दूर फेंककर अपनी कल्चर को भूलिए । बेगाराम के साथ एकाकार बनिए । उसकी आकांक्षाओं के साथ, उसके जानबरो के साथ, उसके माहौल के साथ । फिर बेगाराम का दिल देखिए, वह दिल और दिमाग मोतकर रत्न देगा । उनका भाई-भारा देखिए । वह आपको बेहद प्यार देगा—इतना प्यार कि आपको प्यार का उमड़ता हुआ समुद्र नजर आएगा । वह आपको हर बात मानेगा । फिर आप उसे बताइए कि उसकी गाय का दूध कैसे बड़ सकता है, उसके खेतों में धान कैसे बढ़ सकता है । तब बेगाराम का जोन देवना, वह क्या कर सकता है—देश के लिए समाज के लिए । वह निरक्षर होते हुए पढ़ा-लिखा हो जाएगा ! वह अशिक्षित शिक्षित । और आप—शिक्षित अशिक्षित । अगर दोनों के दिमाग एक ही 'बैब लैंग्व' पर काम करेंगे । "

प्रोफ़ेसर की तरफ देखा—उसकी छाँट मेरी तरफ । लोगों की छाँट मेरी तरफ ।

मेरी छाँट बन्द हो गई और बंद छाँटों में देखकर मैं और सोचने लगता हूँ : बेगाराम कितना साक्षर हो, कितना शिक्षित हो, कितना समझदार हो, उसकी

सुर्गों में जाती था रही मृत्यु मृत्यु, आजादी की रोगनी देखो भी खीर महगूत करे। रोगनी की क्षितिजें उसके घर के आंगन में, उसके हर कोने में पड़ें। अगर कोई बीर बाका दावती है, रोगनी के बीर बीर बनकर गड़ी हो जाती है तो उसने अपनी गमक खीर क्षितिज भी हो कि खीरें हटा दे। साधार होना जरूरी है, पर सामान्य होना, शिमा में कुछ बन जमे, यह उससे भी ज्यादा जरूरी है। बंद आंगन के आगे इतिहास भूत जाता है। आखिर, हैदरप्रवी, रणजीतसिंह।

आंगन गोलता है। वहां कोई नहीं था। केवल मैं।

